RNI : UPHIN/2009/30450

ISSN : 2319- 2178

मूल्य

एक प्रति	: 30 रुपये

व्यक्तियों के लिए

वार्षिक	: 110 रुपये
त्रैवार्षिक	: 300 रुपये
आजीवन	: 2500 रुपये

संस्थाओं के लिए

वार्षिक	: 150 रुपये
त्रैवार्षिक	: 450 रुपये
आजीवन	: 5000 रुपये

विदेशों के लिए (हवाई डाक)

एक अंक	: 6 $
वार्षिक	: 24 $
आजीवन	: 300 $

सदस्यता शुल्क का भुगतान भारतीय स्टेट बैंक की किसी शाखा में 'मधुराक्षर' के बैंक खाता क्रमांक **31807644560**(IFS Code- SBIN0005396, MICR Code - 212002004) में करें। फतेहपुर से बाहर के चेकों व बाह्य-अन्तरण में बैंक शुल्क रुपये 50 अतिरिक्त जमा करें।

मधुराक्षर में प्रकाशित सभी लेखों पर संपादक की सहमति हो, यह आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री की सत्यता व मौलिकता हेतु लेखक स्वयं जिम्मेदार है। पत्रिका में प्रकाशित किसी भी लेख पर आपत्ति होने पर उसके विरुद्ध कार्यवाही केवल फतेहपुर न्यायालय में होगी।

मधुराक्षर

सामाजिक, सांस्कृतिक व साहित्यिक पुनर्निर्माण की पत्रिका

अप्रैल - जून 2016

संपादक
बृजेन्द्र अग्निहोत्री

सह संपादक
डॉ. उत्तम कुमार शुक्ल
डॉ. प्रशांत द्विवेदी

प्रबंध संपादक
डॉ. ऋचा द्विवेदी

संपादकीय कार्यालय
जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर,
फतेहपुर (उ.प्र.) 212601

E-Mail : madhurakshar@gmail.com
Visit us :
www.madhurakshar.blogspot.com
www.facebook.com/agniakshar

चलित वार्ता
+91 9918695656

मुद्रक, प्रकाशक एवं स्वामी बृजेन्द्र अग्निहोत्री द्वारा स्विफ्ट प्रिन्टर्स, 259, कटरा अब्दुलगनी, चौक, फतेहपुर से मुद्रित कराकर जिला कारागार, मनोहर नगर फतेहपुर (उ.प्र.) 212601 से प्रकाशित।

एक नज़र में......

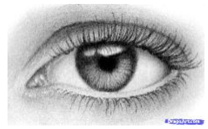

संपादकीय

बृजेन्द्र अग्निहोत्री : अपनी बात 03

कलम को नमन

इलाचंद्र जोशी

रेल की रात (कहानी) 19

स्मरण

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

अपनी भाषा पर विचार (लेख) 26

कहानियां/लघुकथाएं

आशा पाण्डेय ओझा : बेबस बुढ़ापा 04

फरैंज काफ्का : दंपति (सुशांत सुप्रिय–अनुवादक) 08

देवी नागरानी : जंजीरें 12

अर्चना ठाकुर : नई सोच 14

संदीप सृजन : ढोंग 16

आनंद बिल्थरे : सड़ा बीज 18

शबनम शर्मा : फितरत 18

जयेन्द्र कुमार वर्मा : जीविका 40

कविता

संजय वर्मा 'दृष्टि' : रात 24

अखिलेश निगम : अमर रागिनी...... 24

डॉ. प्रशांत द्विवेदी : आजादी आवरण 02

आचार्य बलवंत : आँखें आवरण 02

सपना मांगलिक : मात्र देह नहीं औरत आवरण 03

रीना मौर्य : गीत खुशी के आवरण 03

ग़ज़ल

किशन स्वरुप 25

खुर्शीद नवाब 25

अशोक अंजुम 25

आलेख/शोध–लेख

बृजेन्द्र कुमार : आदिवासी विमर्श और हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता 31

सुरभि श्रीवास्तव : हिंदी पतन की कथा 34

तरन्नुम सिद्दीकी : मन्नू भंडारी की कहानियों में नारी विमर्श 35

मिजानुर हुसैन मंडल : ग्वालपड़िया भाषा एवं लोक संस्कृति 39

संपादकीय

अपनी बात

किसी भी बोली या भाषा का उद्‌भव अचानक से नही हो जाता, इसकी उत्पत्ति और विकास में युगों की विचारधाराएँ सिमटी रहती हैं। बोली या भाषा पहले लोकभाषा का स्थान लेती है, तत्पश्चात धीरे–धीरे साहित्यिक भाषा का स्थान ग्रहण करने लगती है। युगों पूर्व हमारे समाज में वैदिक संस्कृत आर्यों की मान्य भाषा थी, जो साहित्यिक भाषा के रूप में ऋग्वेद में सुरक्षित है। इसका दूसरा रूप लोकभाषा के रूप में अर्द्धशिक्षित तथा अशिक्षित समुदाय में व्यवहृत होता था, जिसका नाम लोक ने संस्कृत रखा। समय के साथ 'वैदिक संस्कृत' का स्थान 'संस्कृत' ने लेना प्रारंभ कर दिया, और धीरे–धीरे 'वैदिक संस्कृत' विलुप्त होती चली गयी। 'संस्कृत' भाषा में जनसमुदाय के लिए अति दुर्बोध शब्दों के प्रयोग के कारण देशज शब्दों का परिपूर्ण कोष लेकर एक नई भाषा ने अस्तित्व ग्रहण किया, जिसे 'प्राकृत भाषा' की संज्ञा मिली. इसी प्राचीन प्राकृत को 'पालि' कहा गया. सम्राट अशोक को इसी पालि–भाषा में, जो पहले जनभाषा थी, अपने उपदेश देने पड़े। पालि–भाषा में जब व्याकरण का समावेश हुआ, वह साहित्यिक भाषा का स्वरूप ग्रहण करने लगी और लोकभाषा के रूप में 'प्राकृत' अपना विस्तार करने लगी। इस समय प्रादेशिकता के अनुसार पैशाची, शौरसेनी, अर्द्धमागधी आदि अनेक प्राकृत–भाषाओँ का उद्‌भव हुआ। जब प्राकृत–भाषाओँ को व्याकरण के नियमों से स्थिर करने की चेष्टा हुई, तब 'अपभ्रंशों' का उद्‌भव हुआ। क्रमशः परिनिष्ठित अपभ्रंशों में साहित्य रचा जाने लगा, तत्पश्चात हिंदी के उद्‌भव और विकास की राह सुगम हो गयी।

वर्तमान समय में हिंदी ने जो स्वरूप ग्रहण कर रखा है, उसे ग्रहण करने से पूर्व उसे अनेक दुर्गम पड़ावों को पार करना पड़ा है। विविधताओं से परिपूर्ण विशाल जनसँख्या वाले भारत देश में स्वयं को स्थापित करने के लिए हिंदी को अनेकों विरोधों–अंतर्विरोधों का सामना करना पड़ा। अहिंदीभाषियों से अधिक हिंदीभाषियों ने 'हिंदी' के अस्तित्व और महत्व पर प्रश्नचिह्न लगाने का असफल प्रयास किया। इसी तरह अपने आठ वर्षों की साहित्यिक–यात्रा में 'मधुराक्षर' को भी अनेक दुरूह परिस्थितियों का सामना करना पड़ा. इसके बावजूद 'मधुराक्षर' काफी समय से, तो कभी विलंब से आपके सामने प्रस्तुत हुई है। इस अंक में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का अविस्मर्णीय और ज्ञानवर्धक लेख 'अपनी भाषा पर विचार' दिया गया है, जिसमें भाषा की महत्ता को स्थापित करने के साथ शब्द–विचार और शब्द–योजना पर आचार्य शुक्ल ने विस्तृत प्रकाश डाला है। इस लेख को प्रकाशित करने का उद्देश्य नवोदित रचनाकारों को यह बोध कराना है कि वह अपनी रचनाओं में नवीन भावबोध से ओत–प्रोत शब्द–योजना का प्रयोग करें. कोई सार्थक व्यंग्य प्राप्त न हो पाने के कारण इस अंक में 'खरी–खरी' स्तंभ नहीं दिया गया, अन्य सभी स्तंभ यथावत हैं।

बृजेन्द्र अग्निहोत्री

कहानी

बेबस बुढ़ापा

आशा पाण्डेय ओझा

संपर्क
09772288424
E mail
asha09-pandey@gmail-com

उमा के कॉलेज की छुट्टी आज साढे चार बजे ही हो गई। वैसे तो कॉलेज का समय एक से छः बजे तक है, परन्तु आज कॉलेज के ट्रस्टी दीनानाथ जी का आकस्मिक निधन हो जाने की वजह से छुट्टी डेढ घण्टा पहले ही कर दी गई। यूं तो यह खबर बहुत दुःखद थी, पर उमा यह सोचकर काफी खुश थी कि चलो कम–से–कम आज का यह डेढ–दो घण्टा वह अपने दद्दू के साथ बिता पायेगी। रोज तो इतनी भागमभाग रहती है कि दस मिनट भी उनके पास बैठ पाने की फुर्सत नहीं मिल पाती। मम्मी, पापा, मैं सब कितना बिजी रहते हैं कि दद्दू के लिये जरा भी वक्त नहीं निकाल पाते। दद्दू अकेले बहुत बोर हो जाते होंग। पर करें भी तो क्या? हम सब की भी तो कितनी मजबूरियां हैं। शहरों में वक्त तो इस तरह कम पडता जा रहा है जिस तरह सहरा में पानी। एक बडा शहर कितना वक्त छीन लेता है ना हमसे..... जो वक्त हमारे अपनों के लिए होता है.... और वो इंसान कितना अकेला पड जाता है जो इस शहरी भागमभाग का हिस्सा नहीं है...? हम भी तो कहां निकाल पाते हैं वक्त दद्दू के लिये! पर दद्दू ने आज तक एक बार भी गिला शिकवा नहीं किया...। घर में घुसते या फिर घर से निकलते वक्त दो मिनिट मुश्किल से बरामदे में बैठे दद्दू से बतिया पाते हैं, वो तो कभी–कभी.... या फिर शाम को खाना देते वक्त पांच मिनिट उनके पास बैठ पाती हूं...। दद्दू खाना भी तो हमारे साथ बैठकर खाने की बजाय अपने कमरे में ही खाते हैं...। सोचते–सोचते उमा ने जाने कब स्कूटी की रफ्तार बढा दी। कॉलेज से शहर के बीच का लगभग सात किलोमीटर का रास्ता उसने रोज की अपेक्षा आज कुछ जल्दी तय कर लिया। बाजार आते ही उसने एकदम से स्कूटी को ब्रेक लगाये जैसे अचानक कुछ याद आया हो। स्कूटी साइड में खडी कर दुकान पर चढते–चढते ही सामान ऑर्डर करने लगी। आज उसने दुकान पर पहले से खडे लोगों की जरा भी परवाह न की। वह बिना रुके एक ही स्पीड से सामान ऑर्डर करती गई। अंकल बोरबोन, मोनाको, पॉपकोर्न, चिवडा, नमकीन बीकाजी भुजिया व मुनक्का दीजिये....प्लीज जल्दी कीजिये।

दुकानदार मुस्कराकर कहने लगा, ''लगता है बेबी जी, आज बहुत जल्दी में हो।''

''हां अंकल! आप प्लीज जल्दी कीजिये।'' सिर्फ 5 ही मिनिट में वह स्कूटी पुनः स्टार्ट कर घर की ओर चल पडी। आज वह एक भी मिनिट व्यर्थ नहीं गंवाना चाहती थी, आज उसको एक चिंता निरन्तर सता रही थी, ''पता नहीं दद्दू कैसे होंगे...! बुखार उतरा होगा या नहीं? कुछ खाया भी होगा कि नहीं...!

शाम करीबन पांच बजे एक प्लेट में बीकाजी भुजिया, बोरबोन बिस्किट व बुखार की गोली रखकर पानी का ग्लास साथ में ले वह दद्दू के कमरे में दाखिल होते हुए दरवाजे से ही दद्दू को प्यार भरी मीठी झिडकी देते हुए कहने लगी, ''दद्दू आज शाम आप टहलने नहीं जायेंगे। समझे ना! आपको बुखार है और यह आपने किसी को बताया तक नहीं। अगर आज मुझे पता न चलता तो आप किसी को बताते भी नहीं, है ना...! और तो और अभी भी आप टहलने जाते हैं...जैसे दो दिन टहलने ना गये तो पार्क पर कोई आफत आ जायेगी...।'' कहते–कहते उमा ने पानी का ग्लास व प्लेट सेंटर टेबल पर रख टेबल को दद्दू के पास खिसका दिया, ''आप नाश्ता लेकर यह बुखार की गोली लें, तब तक मैं आफ लिए गरमागर्म मसालेवाली चाय बनाकर लाती हूं।'' अपनी बात खत्म करने से पहले ही उमा फुर्ती से किचन की तरफ चल पडी।

देविकाप्रसाद जी ने मन ही मन सोचा, आफत तो आ जायेगी बेटा....पर पार्क पर नहीं, इस घर पर.... अगर मैं बहू को इस वक्त घर पर दिखाई दिया तो कोई न कोई आफत तो जरूर आ जायेगी....। बहू के आने से पहले–पहले घर छोड दूं तो अच्छा है.....नहीं तो वो देखते ही दो–चार ताने तो जरूर मारेगी....। देविकाप्रसाद जी को एक–एक करके ज्योति द्वारा सुनाये जानेवाले ताने याद आने लगे जो गत आठ महीनों से वो अपनी इकलौती बहू ज्योति से सुनते आ रहे हैं। बहू के इस कडवे व्यवहार के स्मरण भर से उनका मन अंदर तक कसमसा उठा और बिना कुछ खाये ही वे प्लेट में रखी कडवी गोली उठाकर एक ही झटके से निगल गये। यूं तो दवा निगलना उनको जहर निगलने से कम नहीं लगता, पर उनके प्रति बहू की रग–रग में भरी नफरत और कटुता के ख्याल भर से गोली की कडवाहट को कम कर दिया। वे समझ नहीं पा रहे थे कि आखिर ज्योति उन्हें देखते ही अपना आपा खोकर अनाप–शनाप कुछ भी क्यों बोलने लगती है...! मैं कुछ काम पूछता हूं तो बताती नहीं है, बिना बताये करूं तो उसे सुहाता नहीं है....आखिर क्या करूं? क्या मैं इन सब पर मात्र बोझ बनकर रह गया हूं? उनकी नजर घडी पर पडी, पांच बजकर आठ मिनट हो चुके थे, 'अब पांच–दस मिनिट में बहू आती ही होगी, मुझे निकल लेना चाहिए। कौन सी अब टांगों में जान बची है, पर मुझे घर पर देखकर ख्वामख्वाह बहू का खून जलेगा, जब–जब मैं बहू को घर पर मिला उसने कुछ न कुछ जरूर सुनाया। और कुछ नहीं तो यह कहकर पंखा ही बंद करेगी कि 'बिजली वाले क्या सगे लगते हैं! कितना बिल आता है, जरा खबर भी है...! शहरों के खर्च कितनी मुश्किल से चलते हैं आपको क्या पता! इनसे तो बुड्ढे–बुड्ढे लोग घरों का काम निपटाते हैं, पर यह लाट साहब तो पलंग तोडने से ही बाज नहीं आते।' और भी जाने क्या–क्या सुनने को मिलता है, पर क्या करूं? कोई उपाय भी तो नहीं।' शुक्र है कि बहू ने अब तक बातों के घाव ही दिये हैं, कहीं किसी रोज लातों के....नहीं–नहीं, हे भगवान! ऐसा दिन आने से पहले ही मुझे उठा लेना....।' विचारों की उथल– पुथल में जाने कब सवा पांच बज गये, पुनः नजर घडी की ओर दौडायी और बोल पडे, ''हे राम अब!'' तब तक उमा चाय लेकर आ गई बोली, ''क्या हुआ दद्दू अब!'' ''कुछ नहीं बेटा!'' कहकर देविका प्रसाद जी चुप हो गये। चुप न होते तो कहते भी क्या? उमा ने चाय का कप दद्दू को पकडाते हुए पूछा, ''क्या हुआ दद्दू, आपने बिस्किट क्यों नहीं खाये...? आफ फेवरिट हैं ना!'' ''हां बेटा! पर मन नहीं कर रहा।'' ''ओह दद्दू! आफ लिए ही तो लाई हूं। खा लो न प्लीज!'' ''नहीं बेटा, बस।'' ''अच्छा तो चाय के साथ दो ही ले लो, सुबह से कुछ नहीं खाया है आपने। सुबह जो एप्पल, चीकू, बिस्किट मैंने आफ लिए रखे थे, वो भी यूं के यूं ही रखे हैं...।'' कहते हुए उमा ने बिस्किट चाय में भिगोकर जबरदस्ती दद्दू के मुंह में डाल दिया। पोती के निर्मल स्नेह ने देविकाप्रसाद जी का मन आर्द्र कर दिया। परिणामस्वरूप दो अश्रुकण मोतियों की तरह लुढककर दद्दू की आँखों के किनारे आ गये, जैसे किसी जौहरी ने मोतियों की थैली में से दो सच्चे मोती छांटकर अलग रख लिये हों। पोती के सिर पर स्नेह का हाथ रखकर वो इस कदर भाव विह्वल हो उठे कि होठ कंफपाने लगे व बिस्किट हलक में ही अटक गया। उमा ने अपनी हथेलियों से दद्दू की आँख की कोरी पर आये आँसुओं को पोंछते हुए कहा, ''दद्दू आप भी ना एकदम बच्चे हो...लो ये दो बिस्किट और खा लो प्लीज! मेरे प्यारे दद्दू!'' पोती की मनुहार देविका प्रसाद जी टाल न पाये, दो बिस्किट और खा ही लिये। इतने में स्कूटी का हॉर्न बजा। उमा यह कहते हुए सरपट भागी, ''लगता है मम्मा आ गई, मैं गेट खोलती हूं।'' देविकाप्रसाद जी ने चाय पी ना पी, चप्पल पहनी और कमरे से निकल लिये। बहू ने बिना कुछ बोले ही उनकी तरफ ऐसी तीक्ष्ण दृष्टि से देखा कि देविकाप्रसाद जी को लगा मानो किसी ने एक साथ सौ कटारी कलेजे में घोंप दी हो। वो नजर झुकाकर लडखडाते हुए घर से बाहर निकलने लगे।

उमा घर में घुसती हुई माँ से कहती रही, ''मम्मा देखो ना, दद्दू की तबीयत बिल्कुल ठीक नहीं है, बुखार से तप रहे हैं, फिर भी टहलने जा रहे हैं। आप ही कुछ समझाओ ना दद्दू को।'' ज्योति उमा की बात को अनसुना कर ऊपर अपने कमरे में चली गई। देविकाप्रसाद जी धीरे–धीरे मेनगेट के बाहर हो लिये। उमा ने मुडकर पुकारा, ''दद्दू, प्लीज रुक जाओ। आप आज टहलने मत जाओ...आप आराम करो ना प्लीज!'' पर दद्दू उमा की बात को अनसुना कर आगे बढते गये। उमा को भी लगा, अब दद्दू नहीं मानेंगे तो वह अनमनी–सी गेट बंद कर मुडने लगी कि धडाम की आवाज सुनाई दी, वो फुर्ती से वापस पलटी, देखती है दद्दू गिर पडे। वो अवाक रह गई, एक बार तो समझ में नहीं आया कि क्या करे। फिर झट से गेट खोल बाहर दौडी, दद्दू को उठाने लगी, पर उठा नहीं पाई। वो जोर–जोर से मम्मा–मम्मा पुकारने लगी। उसकी आवाज सुनकर पडोसवाली सुमन आंटी बाहर आ गई, माजरा समझ वो तुरन्त

उमा की मदद करने आ पहुंची। दोनों देविकाप्रसाद जी को सहारा देकर घर ले आई, पलंग पर लिटाया। देविका प्रसाद जी अर्द्ध बेहोशी की स्थिति में थे। गिरने से उनके सिर में मामूली–सी चोट आ गई थी। उसमें से लहू की हल्की–पतली धार निकल रही थी। उमा दौड कर फर्स्ट एड बॉक्स ले आई, डेटोल से दद्दू की चोट साफ की, गोज पीसकर बिटाडीन लोशन लगाकर दद्दू के सिर पर पट्टी की। सुमन आंटी दद्दू की हथेलियों, पगतलियों को बारी–बारी मसल रही थी। उन्होंने पूछा, "क्या हुआ बेटा, आज अभी तक मम्मी नहीं आई क्या?" "नहीं आंटी, वो आ गई, ऊपर बाथरूम में हैं शायद!" "अच्छा बेटा, अब मैं चलती हूं। घर खुला पडा है व तेरे अंकल के आने का टाईम भी हो गया। कोई काम हो तो बुला लेना, और हां तू बाऊ जी को हल्दी का दूध दे देना गरम करके....आराम मिलेगा।" कहते हुए उन्होंने विदा ली। घर में इतनी आवाजों के बावजूद जब ज्योति बहुत देर तक नीचे नहीं आई तो उमा यह कहकर ऊपर चली गई, "दद्दू मैं एक सैकण्ड में आई। मैं मम्मा को बुलाकर लाती हूं। शायद उनका ए.सी. चल रहा होगा तो उन्हें कुछ सुनाई नहीं दिया होगा।"

उमा ने एक साँस में सीढयां चढ लीं। चार बार नोक करने पर मम्मा–मम्मा पुकारने पर भी जब ज्योति ने दरवाजा नहीं खोला तो उमा ने कमरे के बाहर लगी डोर बेल बजा दी। दरवाजे खोलते ही ज्योति बरस पडी, "क्या है?" "मम्मा, नीचे चलो, दद्दू गिर गये हैं।" "गिर गये तो मैं क्या करूं! बुढापे में तनक–तनक करेंगे तो ऐसा ही होगा.... जरा भी बुढापे का लिहाज नहीं इस आदमी को। जीना हराम कर रखा है मेरा तो।" माँ के इस तरह से अनाप–शनाप बोलने पर हैरान उमा माँ से चुप हो जाने का निवेदन करने लगी, "मम्मा, प्लीज चुप हो जाओ। दद्दू सुन लेंगे, आप ये सब क्या बोल रही हो? दद्दू टहलने जा रहे थे, कमजोरी या चक्कर आने से गिर गये होंगे। आपको सुबह भी और अभी–अभी मैंने बताया तो था कि दद्दू को बुखार है।" उमा का वाक्य खत्म होते ही ज्योति फिर चीख पडी, "बुखार है तो लाट साहब जा ही क्यों रहे थे? किसे टाईम दे रखा था? घर में कभी पाव आलू भी न लाकर दिये। चौराहे पर बैठकर ताश खेलने की तबीयत है, घर में कांटे चुभते हैं इनको। तू जा, बहस मत कर मुझसे। मैं कोई मशीन नहीं हूं, दिनभर स्कूल में मगजमारी करूं, घर के काम भी निपटाऊं, ऊपर से इन नखरेजादों के नखरे भी उठाऊं" अपने वाक्य को खत्म करने से पहले ज्योति ने दरवाजा वापस बंद कर लिया। उमा अनमनी–सी सीढयां उतरने लगीं, जितनी फुर्ती से उसने सीढयां चढीं, उतनी ही धीमी गति से वापस वो उतर रही थी। उसे लगा जैसे किसी ने उसके पांवों की शक्ति निचोड ली हो। यह सब कुछ उसकी समझ से बाहर था, उसका कलेजा धक– धक कर रहा था। उसने मन–ही–मन भगवान् से प्रार्थना की, 'हे भगवान! दद्दू ने यह सब ना सुना हो, वरना वे क्या सोचेंगे। अपने ही बेटे के घर में उनके साथ ऐसा व्यवहार...!"

> **"मम्मा देखो ना, दद्दू की तबीयत बिल्कुल ठीक नहीं है, बुखार से तप रहे हैं, फिर भी टहलने जा रहे हैं। आप ही कुछ समझाओ ना दद्दू को।" ज्योति उमा की बात को अनसुना कर ऊपर अपने कमरे में चली गई।**

देविकाप्रसाद जी ने अर्द्धबेहोशी की अवस्था में भी सब कुछ सुन लिया। ज्योति का कमरा सीढयां चढते ही है देविकाप्रसाद जी के कमरे का वेन्टीलेशन, सीढयों में खुलता है। पर देविकाप्रसाद जी के लिए ज्योति का यह रूप नया नहीं था। ज्योति का यह रूप नया तो उमा के लिए था। उमा ने मम्मा का यह रूप पहली बार देखा। वो भी किसी गैर के लिए नहीं, इसी घर के सबसे बुजुर्ग व सम्माननीय व्यक्ति के लिए। उमा हैरान थी, परेशान थी। यह सब देखकर, यह सब सुनकर। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वो अब दद्दू से नजर कैसे मिलाये। उफ्फ यह सब क्या! कोचिंग, डांस क्लास, कॉलेज इन सब में वो इतना व्यस्त थी कि उसका घर पर समय कम ही बीतता। वह पापा के साथ घर से निकलती तो पापा के आने से थोडा पहले ही घर पहुंचती। पापा की पोस्टिंग शहर से 70 कि.मी. दूर होने की वजह से आठ घण्टे की ड्यूटी के अलावा चार घण्टे अप–डाउन के लग जाते थे। सुबह के आठ बजे घर से निकले पापा शाम आठ बजे ही घर पहुंच पाते थे। दद्दू भी तो पापा के आने के बाद ही घर आते हैं। दद्दू अभी आठ महीनों से ही तो हमारे साथ रह रहे हैं। वरन् जब तक बाई जी (दादी) जिंदा थी, तब तक उन्होंने दद्दू के लिए किसी को एक कप चाय बनाने तक की भी नौबत नहीं आने दी। दद्दू प्रधानाध्यापक पद से रिटायर्ड हैं। पेंशन भी अच्छी–खासी आती है। पापा–मम्मा को बाई जी, दद्दू पर एक पैसा खर्च करने की नौबत नहीं

आई। उल्टा पापा, मम्मा को जब–जब एकमुश्त रुपयों की जरूरत महसूस हुई, तब–तब दद्दू ने एकमुश्त रुपये दिये। अभी हाल ही में तो विकास को कोटा शिफ्ट कराने के लिए कोचिंग की डेढ लाख की फीस दद्दू ने ही भरी। फिर मम्मी का व्यवहार दद्दू के प्रति इतना कटु क्यों है? आज आठ महीनों का वो हर पल उमा के सामने चलचित्र–सा घूमने लगा, जो–जो उसने दद्दू के साथ देखा। अच्छा तो दद्दू इसलिए पापा के साथ ही घर से निकल लेते हैं, जो पापा के लौटने के बाद ही वापस घर पर आते हैं। दिन में घर में आते भी हैं तो तब तक घर पर रहते हैं जब तक मम्मा घर पर नहीं रहती। मम्मा के आते ही वो फिर से बाहर निकल लेते हैं और मैं पगली सोचती रही कि दद्दू का घर पर मन नहीं लगता, इसलिये वो बोरियत से बचने के लिए बाहर रहते हैं। 'ओह गॉड! इतना सब कुछ, क्या पापा यह सब जानते हैं? नहीं, पापा नहीं जानते होंगे। वरना वो मम्मा को ऐसा कुछ नहीं करने देते। पापा को कुछ तो बताना पडेगा, अनमनी–सी उमा विचारों में खोई कब वापस दद्दू के कमरे में आकर कुर्सी पर बैठ गई, स्वयं उसे भी याद न रहा। देविकाप्रसाद जी पोती की चिंता को भांप रहे थे। वो जागते हुए भी सोने का बहाना करते रहे ताकि उमा को यह न लगे कि उन्होंने सब कुछ सुन लिया।

सुबह आठ बजे कोचिंग के लिए जाते हुए जब उमा ने दद्दू को बरामदे में बैठे देखा तो यूं ही पूछ बैठी, ''क्या हुआ दद्दू, आप टहलने नहीं गये! आप बिना दोस्तों का मन कैसे लगेगा?'' और हँसते हुए जैसे ही वो दद्दू से लिपटी, एकाएक चौंक उठी, ''ओह दद्दू! आपको तो तेज बुखार है, शरीर गर्म है। कब से है बुखार! आपने पापा को बताया क्यों नहीं?'' उमा भागते हुए वापस घर में गई, माँ से बोली, ''मम्मा दद्दू को तेज बुखार है। आज आप छुट्टी ले लो ना।'' ज्योति ने साफ मना कर दिया, ''मैं छुट्टी नहीं ले सकती। अभी प्रिंसीपल बहुत स्ट्रिक्ट है।'' उमा ने फिर से कहा, ''मम्मी ले लो ना प्लीज। दद्दू इस हालत में दिनभर अकेले कैसे रहेंगे?'' ज्योति ने फिर वही जवाब दोहराया, ''कहा ना, नहीं ले सकती। तुम बार–बार क्यों कह रही हो?'' ज्योति ने इतनी स्पष्टता से मना किया कि उमा फिर आगे कुछ नहीं कह पाई। वो वापस बाहर आ गई, उसने दद्दू से कहा, ''अच्छा दद्दू, आज मैं कोचिंग व कॉलेज नहीं जाती। पापा तो निकल चुके हैं, मम्मा छुट्टी नहीं ले सकती। मैं आज घर पर रह जाती हूं, आपको डॉक्टर को भी दिखा लाऊंगी और दिनभर आपका ख्याल भी रख लूंगी।'' ''नहीं बेटा..! मेरा क्या ख्याल रखना। मैं कोई बच्चा थोडे ही हूं। फिर यह बुखार तो बुढापे की तासीर है, एक–दो दिन में खुद ही ठीक हो जायेगा, तू कोचिंग जा बेटा और कॉलेज भी। तेरे एग्जाम भी तो सिर पर हैं।'' ''नहीं दद्दू! आपको इस हाल में अकेला नहीं छोडूंगी, एक दो दिन कोचिंग व कॉलेज न जाऊंगी तो कोई फर्क नहीं पडेगा।'' कहकर उमा दद्दू के पास ही बेंच पर बैठ गई। देविकाप्रसाद जी ने उमा के सिर पर हाथ फिरा कर प्यार से समझाया, ''तू चिन्ता बहुत करती है पगली। तू जा। मैं आज कहीं न जाऊंगा, दिनभर घर पर ही आराम करूंगा। बुढापे में तबीयत थोडी ऊपर नीचे होती रहती है, इसमें फिक्र की कोई बात नहीं। हां, शाम को चाय तेरे हाथ की ही पीऊंगा, समझी। अभी तू जा।'' उमा अनमने मन से उठी और वापस घर में गई। एक प्लेट में एप्पल, चीकू रखे, बिस्किट–नमकीन की बरनी खोली, देखा नमकीन खत्म हो गई है। बिस्किट भी सिर्फ मैरी ही बचे हैं, जो दद्दू को बिल्कुल पसन्द नहीं। दद्दू के कमरे में टेबिल पर सामान रखकर बोली, ''दद्दू, आप यह फ्रूट्स खा लेना। मैरी बिस्किट भी हैं...मैं जानती हूं आपको यह बिल्कुल पसन्द नहीं, पर खा लेना प्लीज! मेरे प्यारे दद्दू। आप जल्दी रैडी हो जाओ, फिर आपकी पसंदीदा दाल की कचौरी बनाऊंगी।'' देविकाप्रसाद जी ने पोती का मन रखने के लिए हां भर दी, पर वे जानते थे कि वो कुछ भी नहीं खा पायेंगे।

''तू चिन्ता बहुत करती है पगली। तू जा। मैं आज कहीं न जाऊंगा, दिनभर घर पर ही आराम करूंगा। बुढापे में तबीयत थोडी ऊपर नीचे होती रहती है, इसमें फिक्र की कोई बात नहीं। हां, शाम को चाय तेरे हाथ की ही पीऊंगा, समझी। अभी तू जा।''

बाय कहते हुए उमा ने बुझे मन से स्कूटी स्टार्ट की, दद्दू को देखते हुए धीरे–धीरे गेट से बाहर निकल कोचिंग क्लास की ओर चल पडी। पर आज उसका मन पढाई में नहीं लगा, ना कोचिंग में, ना कॉलेज में। बार–बार सोचती रही, मम्मा एक दिन छुट्टी ले लेती तो क्या हो

जाता। दद्दू क्या सोचेंगे। इस हालत में भी हमें इतनी परवाह नहीं। आज छुट्टी जल्दी हो जाने से उमा इतनी खुश हुई, मानो कोई मुंहमांगी मुराद पूरी हुई हो।

विचारों में खोई उमा की तन्द्रा तब टूटी, जब दद्दू के कराहने की आवाज आई, ''क्या हुआ दद्दू!'' ''कुछ नहीं बेटा! थोडा–सा शरीर अकड गया है। तू आज डांस क्लास नहीं गई।'' ''नहीं दद्दू! आपको इस हाल में छोडकर डांस क्लास...!'' उमा अपना वाक्य तोडते हुए ही बीच में बोली, ''आफ लिए चाय बनाकर लाऊं दद्दू!'' ''नहीं बेटा! अदरकवाला दूध।'' कहते–कहते अचानक उमा को याद आया, सुमन आंटी ने हल्दीवाला दूध देने को कहा था। ''बाप रे! मैं तो भूल ही गई। एक मिनिट आई दद्दू।'' कहकर उमा किचन में चली गई। हल्दीवाला दूध बनाकर लाई व दद्दू को बहला–फुसला कर पिलाया। शाम साढे सात बजे उमा को रसोई में खटपट की आवाज आई। उमा को लगा मम्मा नीचे आ गई, पर वह दद्दू के पास ही बैठी रही। उसका मन न किया कि वह जाकर मम्मा की कुछ और बात करे। वो तो बस पापा के आने का बेसब्री से इंतजार कर रही थी। पापा के आने का अहसास होते ही वह मेनगेट की ओर दौड पडी। लगभग पापा के हाथ से बेग छीनते हुए कहने लगी, ''पापा दद्दू की तबीयत ठीक नहीं है। सुबह से बुखार है। आप फटाफट गाडी निकालिए। दद्दू को डॉक्टर को दिखाना होगा। पापा आप जल्दी से गाडी निकालो, तब तक मैं दद्दू को लेकर आती हूं।'' उमा अंदर भागी, फटाफट दद्दू को बाहर लाने की तैयारी करने लगी। देविकाप्रसाद जी कहते ही रहे, ''बेटा तू क्यों बेवजह नरेश को परेशान कर रही है। मैं एकदम ठीक हूं।'' पर उमा ने एक न सुनी। वो दद्दू को बाहर ले आयी, रास्ते में पापा को दद्दू की तबीयत के बारे में, गिरने के बारे में विस्तार से बताती रही।

वे लोग डॉक्टर को दिखाकर लौटे, जब तक ज्योति रसोई का काम निपटा कर वापस ऊपर अपने कमरे में जा चुकी थी। उमा ने रसोई में जाकर देखा, मम्मा ने दद्दू को बुखार में खिलाने के हिसाब से कुछ नहीं बनाया। उसने फटाफट दलिया बनाया, पापड सेका व दद्दू के लिए ले आई। दोनों बाप–बेटी ने मिलकर बडे प्यार व मनुहार से दद्दू को दलिया खिलाया। अलबत्ता पापड उन्होंने बिना आनाकानी के खा लिया। प्लेट रसोई में रखने गई उमा को मुनक्का याद आई। उसने आठ–दस मुनक्का तवे पर सेकी, काला नमक व काली मिर्च लगाकर ले आई। नरेश बेटी की समझदारी पर गर्व कर रहे थे, तो देविका प्रसाद जी पोती के स्नेह से अभिभूत हो उठे।

देविका प्रसाद जी को नींद आने पर दोनों बाप–बेटी उठकर किचन में आये। पापा को खाना गरम कर परोसते वक्त उमा ने पापा से दद्दू के प्रति माँ के व्यवहार का जक्र किया। नरेश ने नीचे गर्दन करके कहा, ''मुझे सब पता है बेटा, बाऊ जी के बारे में। बाऊ जी से ज्यादा ताने तो मुझे सुनने को मिलते हैं, पर मैं मजबूर हूं। मैं अब बाऊ जी को गांव भी नहीं छोड सकता। बाई जी थी, जब तक मैं निश्चिंत था, अब गांव में किसके भरोसे छोडूं? यहां रखने पर कम से कम सुबह–शाम इनकी शक्ल तो देख पाता हूं।'' ''पर पापा, दद्दू इस कदर इतनी बेइज्जती कब तक सहते रहेंगे। वो अंदर ही अंदर टूट बिखर रहे हैं। वो किसी से मन की बात कह भी नहीं पाते। वो इस तरह घंटों– घंटों घर से बाहर कब तक रहेंगे।'' ''हां बेटा, पर तू ही बता, मैं क्या करूं?'' कहते–कहते नरेश ने अपनी डबडबाई आँखें बेटी से छुपाने की कोशिश कीं। पर बेटी ने बाप का दर्द भांप लिया तुरन्त बात को बदलते हुए कॉलेज के ट्रस्टी के आकस्मिक निधन की बात पर आ गई, क्योंकि वह जानती थी, मम्मा जिस बात पर अडती है, फिर किसी की नहीं सुनती, और तब पापा की भी एक नहीं चलती। जब से दद्दू साथ रहने आये हैं, मम्मा कुछ ज्यादा ही मनमानी करने लगी है। दोनों खाना खाकर अपने–अपने कमरे में चले गए। पर उमा को रात भर नींद नहीं आई, सोचती रही 'दद्दू कब तक इस तरह जलील होकर जीते रहेंगे। क्या मैं दद्दू के लिए कुछ नहीं कर सकती।'' नींद से कोसों दूर घंटों परेशान उमा का चेहरा एकदम से चमक उठा। पच्चीस दिन से आज पहली बार उसे अपने प्री–बी. एड. में पास होने के परिणाम की खुशी हुई, वो बी.एड. करना नहीं चाहती थी, क्योंकि उसका सेन्टर दूसरे शहर में आया था और वह मम्मी–पापा से दूर नहीं जाना चाहती थी। पर आज उसने तय कर लिया, अब वह बी.एड. करेगी और दद्दू उसके साथ रहेंगे, वो भी अकेली नहीं रहेगी और दद्दू भी मजबूर नहीं रहेंगे। सुबह उठते ही उसने पापा को अपना निर्णय सुनाया। देविकाप्रसाद जी पोती के अपनेपन के भंवर में डूब रहे थे, तो नरेश बेटी की समझदारी के सागर में तैर रहे थे। उन्हें लगा कि उनके कर्तव्य की किश्ती को उनकी बेटी ने डूबने से बचा लिया।

जर्मन कहानी

दंपति

लेखक
फ्रैंज काफ्का

अनुवाद
सुशांत सुप्रिय

I–5001 ,
गौड़ ग्रीन सिटी,
वैभव खंड इंदिरापुरम
गाजियाबाद 201010

व्यापार है ही बुरी चीज। मुझे ही लीजिए। दफ्तर के काम से जब थोड़ी देर के लिए भी मुझे छुट्टी मिलती है तो मैं अपने नमूनों की पेटी उठाकर खुद ही अपने ग्राहकों से मिलने चल देता हूँ। बहुत दिनों से मेरी इच्छा एन. के पास जाने की थी। कभी एन. के साथ मेरा काफी अच्छा कारोबार चल रहा था, लेकिन पिछले कुछ सालों से यह ठप्प पड़ गया था। क्यों ? यह तो मुझे भी नहीं पता। ऐसी बात तो कभी बिना सचमुच के किसी कारण के भी घट सकती है। आजकल समय ही ऐसा है कि किसी का महज एक शब्द भी सारे मामले को उलट–पलट कर रख सकता है जबकि एक ही शब्द सब कुछ ठीक–ठाक भी कर सकता है। दरअसल एन. के साथ कारोबार करना बड़ा नाजुक मामला है। वह एक बूढ़ा आदमी है और बुढ़ापे के कारण काफी अशक्त भी हो गया है, फिर भी वह अपने कारोबारी मामलों को अपने ही हाथ में रखना पसंद करता है। अपने ऑफिस में तो वह आपको शायद ही कभी मिले और उससे मिलने के लिए उसके घर जाना एक ऐसा काम है जिसे कोई भी भला आदमी टालना ही पसंद करेगा। फिर भी कल शाम छह बजे मैं उसके घर के लिए निकल ही पड़ा। यह किसी से मिलने के लिए जाने का समय तो नहीं था पर मेरा वहाँ जाना कारोबारी कारण से था, कोई सामाजिक सद्भाव नहीं। सौभाग्य से एन. घर पर ही था। अभी वह अपनी पत्नी के साथ सैर करके लौटा था। नौकर ने बताया कि साहब इस समय अपने बेटे के सोने के कमरे में हैं। बेटा बीमार था। नौकर ने मुझसे वहीं जाने का आग्रह किया। पहले तो मैं थोड़ा हिचका। फिर सोचा कि क्यों न इस अप्रिय मुलाकात को जल्दी निपटा दिया जाए। इसलिए मैं उसी हालत में, यानी ओवरकोट और टोपी पहने, हाथ में नमूनों की पेटी लिए एक अँधेरे कमरे को पार करके एक नीम अँधेरे कमरे में दाखिल हुआ, जहाँ तीन–चार लोग पहले से ही मौजूद थे। मेरी पहली नजर जिस व्यक्ति पर पड़ी वह एक एजेंट था, जिसे मैं अच्छी तरह जानता था। एक तरह से वह मेरा कारोबारी प्रतिद्वन्द्वी था। मुझे लगा, वह मुझसे पहले ही बाजी मार ले गया। वह आराम से बीमार के बिस्तर के पास ही बैठा था, जैसे वह कोई डॉक्टर हो। अपने ओवरकोट के बटन खोले बैठा वह निर्लज्ज–सा लग रहा था। बीमार आदमी भी शायद अपने विचारों में खोया हुआ लग रहा था। उसके गाल बुखार से तप रहे प्रतीत हो रहे थे। वह बीच–बीच में उस आगंतुक की ओर भी देख लेता था । एन. का बेटा छोटी उम्र का नहीं था। वह लगभग मेरी ही उम्र का होगा। उसकी छोटी–सी दाढ़ी बीमारी के कारण छितरायी हुई थी।

बूढ़ा एन. लम्बा–तगड़ा आदमी था। उसके कंधे काफी चौड़े थे। पर यह देखकर मुझे हैरानी हुई कि वह अब दुबला हो गया था। उसकी कमर भी झुक गयी थी। वह अशक्त हो गया था। उसने अभी तक अपना कोट नहीं उतारा था। वह अपने बेटे के कान में कुछ फुसफुसा रहा था। उसकी पत्नी छोटे कद की दुबली और फुर्तीली महिला थी। ऊँचाई में काफी फर्क होने के बावजूद वह अपने पति के कोट को उतारने में उसकी मदद करने लगी। हालाँकि शुरू में उसे दिक्कत हो रही थी, किंतु आखिरकार वह इसमें सफल हो गयी। लेकिन असल दिक्कत तो एन. के अधैर्य के कारण थी। कोट अभी पूरा उतरा भी नहीं था कि वह अपने हाथों से आरामकुर्सी के हत्थे टटोलने लगा था। उसकी पत्नी ने कोट उतारते ही आरामकुर्सी जल्दी से उसके पास सरका दी और खुद उसका कोट उठा कर रखने चली गई। कोट उठाए हुए वह खुद उसके बीच में लगभग ढँक–सी गई थी।

आखिरकार मुझे लगा कि वह समय आ गया है या यूँ कहूँ कि अपने–आप तो वह समय आता नहीं। मैंने सोचा कि जो कुछ करना है, मुझे जल्दी ही कर लेना चाहिए। मुझे लग रहा था कि कारोबारी बातचीत के लिए समय धीरे–धीरे प्रतिकूल होता जा रहा है। उस एजेंट के लक्षण तो मुझे ऐसे दिख रहे थे जैसे वह वहीं जमा रहना चाहता हो। यह मेरे हित में नहीं था, हालाँकि मैं वहाँ उसकी उपस्थिति को जरा भी अहमियत नहीं देना चाहता था। इसलिए मैंने बिना किसी भूमिका के झटपट अपने धंधे की बात शुरू कर दी, बावजूद इसके कि इस समय एन. अपने बीमार बेटे से बात करना चाह रहा था। दुर्भाग्य से यह मेरी आदत हो गई थी कि जब मैं अपनी असली बात पर आता हूँ– जो कि आम तौर पर जल्दी ही होता है और इस मामले में तो समय और भी कम लगा– तो मैं बात करते–करते खड़ा हो जाता हूँ और चहलकदमी करने लगता हूँ। किसी दफ्तर में तो यह हरकत बड़े ही स्वाभाविक तरह से हो सकती है, पर यहाँ बड़ा अटपटा लग रहा था। फिर भी मैं खुद को रोक नहीं पाया। इसका एक कारण और भी था। सिगरेट की बड़ी तलब लग रही थी। ठीक है, हर आदमी की कुछ बुरी आदतें होती ही हैं। दूसरी ओर, उस एजेंट की हालत देखकर मुझे बहुत राहत मिल रही थी। वह उद्विग्न लग रहा था वह अचानक घुटने पर रखी अपनी टोपी उठा कर झटके से अपने सिर पर रख लेता था और फिर वहाँ उसे ऊपर–नीचे करता रहता फिर अचानक उसे लगता कि उससे कोई गलती हो गई है। तब वह उस टोपी को अपने सिर से उतार कर वापस अपने घुटने पर रख देता। हर एक–आध मिनट में वह इन्हीं हरकतों को दोहराता जा रहा था। मुझे तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ रहा था, क्योंकि मैं तो चहलकदमी करता हुआ अपने प्रस्तावों में पूरी तरह से खोया हुआ था और उसे अनदेखा कर रहा था, लेकिन उसकी ये हरकतें अन्य लोगों को जरूर आपे से बाहर कर रही होंगी ।

कुछ भी हो, वह बहुत बूढ़ा हो गया था। काश! हम सबको भी ऐसी मौत नसीब होती।

दरअसल मैं जब अपनी बात में पूरा रम जाता हूँ तो ऐसी हरकतों की ही क्या, किसी भी बात की परवाह नहीं करता। जो कुछ हो रहा होता है, उसे मैं देखता तो हूँ पर उस ओर तब तक कोई ध्यान नहीं देता, जब तक कि मैं अपनी बात पूरी न कर लूँ, या जब तक कोई दूसरा व्यक्ति किसी तरह की आपत्ति प्रकट न करे। इसलिए मैं सब कुछ देख रहा था। मसलन् एन. मेरी बात की ओर जरा भी ध्यान नहीं दे रहा था। कुर्सी के हत्थे को पकड़े वह बिना मेरी ओर देखे बेचौनी से कसमसाया। वह कहीं शून्य में टकटकी लगाए देख रहा था, जैसे कुछ ढूँढ़ रहा हो। उसके चेहरे को देखकर कोई भी समझ सकता था कि मेरे कहे हुए शब्दों से या सही कहें तो मेरी उपस्थिति से भी वह पूरी तरह अनभिज्ञ लग रहा था। उसकी और उसके बीमार बेटे की हालत मेरे लिए शुभ लक्षण नहीं थे , फिर भी मैंने स्थिति को काबू में रख कर अपनी बात कहनी जारी रखी, जैसे मुझे विश्वास हो कि अपनी बात कह कर मैं सारा मामला फिर से ठीक कर लूँगा।

मैंने एन. के सामने एक लाभकारी प्रस्ताव रखा, हालाँकि बिना माँगे ही जिस तरह की रियायतें देने की बात मैंने कह दी थी, उसने खुद मुझे ही चौंका दिया। इस बात से मुझे बड़ा संतोष मिला कि मेरे प्रस्ताव ने उस एजेंट को चक्कर में डाल दिया था। उस पर एक सरसरी निगाह डालते हुए मैंने देखा कि अपनी टोपी को जहाँ–का–तहाँ छोड़कर अब उसने अपने दोनो हाथ अपनी छाती पर बाँध लिए थे। मुझे यह स्वीकार करने में हिचक हो रही है कि मेरे इस कृत्य का उद्देश्य उसे धक्का पहुँचाना भी था। अपनी इस जीत के उत्साह में मैं काफी देर तक अपनी बात कहता रह , लेकिन तभी उसके बेटे न , जिसे मैं अपनी इस योजना में फालतू चीज समझे बैठा था, बिस्तर से उठ कर काँपते हाथों से मुझे धक्का दे दिया। हो सकता है वह कुछ कहना चाहता हो या किसी बात की ओर संकेत करना चाहता हो, लेकिन उसमें इसकी ताकत न हो। पहले तो मुझे लगा जैसे उसका दिमाग घूम गया हो, पर जब मैंने बूढ़े एन. पर एक उबाऊ नजर डाली तो सारी बात मेरी समझ में आ गई। एन. की खुली हुई आँखें भावशून्य और सूजी हुई थीं। लग रहा था जैसे उसे बहुत कमजोरी महसूस हो रही हो। वह काँप रहा था और उसका शरीर आगे की ओर झुका जा रहा था, जैसे कोई उसके कंधों को ठोक रहा हो। उसका निचला होठ या यूँ कहें कि निचला जबड़ा लटक गया था और वहाँ से झाग–सा बाहर आ रहा था। वह बड़ी मुश्किल से साँस ले पा रहा था। फिर अचानक जैसे उसे सारे कष्ट से मुक्ति मिल गयी हो, उसने कुर्सी पर पीठ टिका कर आँखें बंद कर लीं।

दर्द का एक गहरा अहसास उसके चेहरे पर से गुजरा और लगा जैसे सब कुछ खत्म हो गया हो।

मैं झटके से उसकी ओर गया और उसकी बेजान कलाई थाम ली। वह इतना ठंडा था कि एक बार तो ठंड की एक लहर मेरे पूरे शरीर में दौड़ गई। नब्ज थम गयी थी यानी सब खत्म हो गया था। कुछ भी हो, वह बहुत बूढ़ा हो गया था। काश हम सबको भी ऐसी मौत नसीब होती। लेकिन अब मैं क्या करूँ? मैंने मदद के लिए आसपास देखा। उसके बेटे ने चादर सिर तक ओढ़ ली थी और उसकी सिसकियों की आवाज मैं साफ सुन रहा था। वह एजेंट तो किसी मछली की तरह ठंडा लग रहा था। वह एन. से दो कदम दूर अपनी कुर्सी पर अचल बैठा था और लग रहा था कि वह कुछ नहीं कर पाएगा। इसलिए मैं ही वह एकमात्र व्यक्ति था, जो कुछ कर सकता था। बड़ा कठिन काम था उसकी पत्नी को उसकी मौत की खबर देना, और वह भी इस तरह कि वह उसे सहन कर सके। बगल के कमरे से मुझे उसकी पदचाप सुनाई देने लगी थी।

वह अभी तक बाहर वाले कपड़ों में ही थी। उन्हें बदलने का उसे अभी तक समय ही नहीं मिला था। वह अपने पति को पहनाने के लिए आग के सामने गरम करके घर के कपड़े लायी थी। हमें स्थिर बैठे देख उसने मुस्कराते और अपनी गर्दन हिलाते हुए कहा, ''वे सो गए हैं।'' अपने अपरिमित निर्दोष विश्वास के साथ उसने अपने पति की वही कलाई पकड़ी जो कुछ देर पहले मैंने पकड़ी थी और बड़े प्रमुदित मन से उस पर एक चुम्बन अंकित कर दिया। हम तीनो आश्चर्य से देखते ही रह गए कि एन. हिला और उसने जम्हाई ली। पत्नी ने उसे घर की कमीज पहनाई और इतनी लम्बी सैर के लिए, जिसने उसे थका दिया था, उलाहना देने लगी। वह उस उलाहने को खीझ और व्यंग्य के भाव से सुनता रहा और जवाब में उसने कहा कि वह उकताने लगा था और उसी वजह से उसे नींद आ गई थी। और फिर कुछ देर आराम करने के लिए उसे बीमार के बिस्तर पर ही लेटा दिया गया। सिर के नीचे रखने के सिए उसकी पत्नी जल्दी से दो तकिये ले आई और बीमार के पायताने की ओर रख दिए। अपने कमरे में उसे इसलिए जाने नहीं दिया गया, क्योंकि वहाँ जाने के लिए एक खाली कमरे से गुजरना पड़ता था और उसमें उसे ठंड लग सकती थी ।

जो कुछ पहले घटा था, अब उसमें मुझे कोई विचित्रता नहीं लग रही थी। फिर एन. ने शाम का अखबार माँगा और बिना अपने मेहमानों की ओर जरा भी ध्यान दिए अखबार खोल लिया। वह ध्यान से अखबार नहीं पढ़ रहा था। यूँ ही सरसरी तौर पर इधर–उधर निगाह डाल रहा था। उसने हमारे प्रस्तावों पर कुछ अप्रिय टिप्पणियाँ भी कीं। दरअसल उसने अपने हाथ को बड़े तिरस्कारपूर्ण ढंग से हिलाते हुए जिस तरह की तीखी टिप्पणियाँ की थीं उसमें इस बात की ओर स्पष्ट संकेत था कि कारोबार करने के हमारे तरीकों ने उसके मुँह का स्वाद खराब कर दिया है। यह सब सुनकर उस एजेंट ने भी एक–दो अप्रिय टिप्पणियाँ कर ही दीं। बेशक, जो कुछ घटा थ , उसकी क्षतिपूर्ति का यह सबसे घटिया तरीका था। जल्दी ही मैंने उनसे विदा ले ली। मैं उस एजेंट का आभारी था, क्योंकि यदि वह न होता तो मुझे वहाँ से खिसकने का इतना अच्छा मौका न मिल पाता।

बाहर निकलते हुए बरामदे में मुझे श्रीमती एन. मिल गईं। उनकी करुण मूर्ति को देखकर मैंने कहा कि उन्हें देखकर मुझे अपनी माँ की याद आ गई। उन्हें चुप देखकर मैंने आगे कहा, ''लोग जो भी कहें, पर वह चमत्कार कर सकती थीं। जिन चीजों को हम तोड़–फोड़ देते, वह उन्हें फिर से ठीक कर देतीं। जब मैं बच्चा था, तभी उनकी मृत्यु हो गई थी।'' मैंने यह बात बड़े धीरे–धीरे और सुस्पष्ट ढंग से कही। मेरा ख्याल था कि वह वृद्धा जरा ऊँचा सुनती है, पर वह तो बिल्कुल भी नहीं सुन पाती थी, क्योंकि मेरी बात को बिना समझे उसने पूछा था, ''मेरे पति आपके प्रस्ताव पर क्या कह रहे हैं ?'' विदाई के दो चार शब्दों के बीच मुझे यह भी लगा कि वह मुझे एजेंट समझ रही है, अन्यथा वह अधिक विनयी होती।

फिर मैं सीढ़ियाँ उतर गया। उतरना चढ़ने से ज्यादा थका देने वाला साबित हुआ, हालाँकि चढ़ना भी कोई आसान काम नहीं था। ओह, कितनी ही कारोबारी मुलाकातें ऐसी होती हैं जिनका कोई परिणाम नहीं निकलता है, पर इसके लिए हाथ पर हाथ धरे भी तो नहीं बैठा जा सकता और मुलाकातें करते रहना पड़ता है ।

कहानी

जंजीरें

देवी नागरानी

9–डी, कार्नर व्यू
सोसाइटी,
15ध्33 रोड, बांद्रा,
मुम्बई

जीवन मृत्यु के दो पाटों के बीच, पीड़ा को अपने भीतर जब्त करते हुए एक ऐसी खुशी को जन्म देने की कगार पर खड़ी सकीना उस उजाले का इन्तजार कर रही थी जो उसके जीवन की अंधेरी पगडंडियों को रौशन करने के लिये आमद था। डॉक्टर और नर्स भी नई सुबह की एक नई मधुर किलकारी सुनने की उम्मीद में अपनी तरफ से उसकी गिरती हालत से जूझ रहे थे। पर कुदरत के किये पर किसी का बस कहाँ ? नियति के हर मुकम्मल फैसले के सामने सभी बेबस रहते हैं !

नारी का ममत्व उसकी विवशता नहीं उसकी फितरत है। अपनी कोख से जन्मे बच्चे का लालन पालन करना, अपने आँचल की छांव में अपना सारा वात्सल्य उसपर न्यौछावर करना नारी का सौभाग्य है, कुदरत की ओर से मिला वरदान! प्रसव पीड़ा के उपरांत जो ममता का सागर नारी की छाती में छोलियाँ मारता है, उस खुशी का अनुमान फकत वह माँ ही लगा सकती है जो पीड़ा के दौर से गुजरकर उस खुशी को हासिल करती है । यह एक आस्था है जो हौसलों के परों में संचार के समस्त साधन भरकर, बेपरवाज पंछी को तव्वजू से अपना लक्ष्य पाने के लिए मददगार साबित होती है।

उसी खुमार भरे दौर से गुजरती सकीना को कशमकश के दौर से झकझोर कर होश में लाने का प्रयास करते हुए डॉक्टर रमाकान्त ने उसकी ओर मुखातिब होते हुए कहा– 'तुम्हें बेटा हुआ है।'

सकीना ने आँखे खोलकर डॉक्टर के चेहरे पर ढलती मुस्कान देखी और उस सखेद स्वर की तहों में एक अनचाहा अर्थ पढ़ने की कोशिश की । फिर अपने बगल में नजर फिराई तो उसके शरीर में जैसे जान लौट आई ।

'मुझे अपना बेटा दे दो, मैं उसे अपनी छाती से लगा लूँ।' ममता ने सब्र के सारे बांध तोड़ते हुए कहा। डॉक्टर रमाकान्त के इशारे पर नर्स ने रेशमी कपड़े में लिपटा शिशु उठाकर सकीना की गोद में रखते हुए धीमे से कहा – 'यह जिसकी अमानत थी, उसे जाकर मिल गई।' सकीना ने जैसे कुछ सुना ही नहीं । बस रेशम से नर्म, मखमली शिशु को अपनी छाती से लगाकर आँखें मींचे लेटे रही, उसके चेहरे पर अनोखी सांत्वना का आलम रहा।

अपनी बाँहे बेटे के नाजुक शरीर के ईर्द–गिर्द लपेट लीं, कुछ इस तरह जैसे वह अपने वजूद से एकाकार हुई हो ।

'सकीना यह बच्चा मर चुका है' फुसफुसाहट करती आवाजें अपने आस–पास सुनकर ख्यालों के घोर अँधेरे में डूबती रहीं। उसे लगा जैसे सूरज की पहली किरण के साथ उसका बच्चा इस जहान में आया तो सही पर रोशनी में आँख खोलने के पहले अंधेरे में विलीन हो गया। पीछे छोड़ गया एक धुँधला–सा कोहरा जो सोचों पर बेरहम कचोटते वार करता रहा।

यह कैसी घोषणा है? सुनकर उसे लगा जैसे कोई खयाल पनपा, सांस लेकर परछाई की तरह लुप्त हो गया । अपनी माँ के ममत्व का मर्म भेदी न बन सका । सकीना की आँखों से अश्कों की लड़ियाँ गालों से लुढ़कती, छाती से लिपटे नवशिशु को नहलाती रही । पीड़ित ममता जीवन और मृत्यु के बीच की खाइयाँ लाँघते हुए अपने जीवन का मातम मनाती रही। मूर्छित दशा में भी सकीना की स्पंदित आवाज

कुछ अस्पष्ट शब्दों की हुंकार में जैसे आप बीती सुना रही थीं– 'मैं जानती हूँ मेरे बच्चे, तू मुझे लेने आया है, मौत की अंधेरी गुफा से निकालकर जिन्दगी की रोशनी में लाया है ताकि मैं तुझे पा सकूँ, जहाँ कोई माँ अपने बच्चे से जुदा होने का गम न झेले, दुख की सिसकियों की बजाय सुकून की शहनाई सुन सके।'

और इसी खुमारी के आलम में एक हिचकी की सरसराहट हवाओं में फैली और सांस की कड़ी जैसे टूट गई । वातावरण की खामोशियों को तोड़ती हुई दो आत्माएँ एक दूजे के आलिंगन में बस गई। बस पिंजरे खाली हो गए, पंछी परवाज कर गए। सुबह की पहली किरण कमरे के दर–दरीचों से झांक कर अन्दर आई, ममतामयी माँ का शान्त चेहरा चूमकर चली गई, क्योंकि जीवन पर अब शाम हावी थी। दो तन एक दूसरे के आगोश में ऐसे समाए जैसे कभी वो परस्पर जुदा ही न हुए थे। इस अमर मिलन के मंजर ने हर चश्म को तर कर दिया । शिशु माँ की छाती से लिपटा हुआ अपनी प्यास बुझा रहा है और सकीना एक कैदी माँ, जिसे वह अपने पिता 'आलम' के जुल्मों की शहनशाही जंजीरों की पनाह की से मुक्त कराने के लिए मसीहा बनकर आया। यही सकीना जब सात साल की थी, उसकी माँ गुजर गई, बाप माँ बन गया । यह सोए तो वह सोए, यह जागे तो वह भी जागे । पिता ने प्यार व तव्वजो से सींचा, फिर भी सकीना के मुरझाए मन की कली फूल न बन पाई । गुड्डे–गुड़ियों का खेल बाल मन को बहला न सका। सारी कायनात माँ बिना सूनी–सूनी–सी लगती थी। अपने अश्क छुपाने की कोशिश में उसकी जबान पर ताले लगते गए। उसकी सोचों पर पहरे लगे रहे, उलझे विचारों की जंजीरों में वह जकड़ी रहती । सब कुछ होते हुए भी जाने क्यों वह खुद को दरिद्रता की हीन भावना की दलदल में धंसता हुआ पाती।

जिन्दगी की सार्थकता के संदर्भ में एक साधक का कथन है – 'हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता ।' यही सत्य जिन्दगी के तवील सफर में संघर्षमय रास्तों पर चलने का हौसला प्रदान करता है। आदमी की संघर्षक्षमता और ऊर्जा में ही उसकी असली पहचान और ताकत छुपी हुई होती है । जब उस पर बन आती है तो वह अपने बच्चों की खातिर आँधियों में एक टिमटिमाते दिये के समान उम्मीदो के नाम पर नाउम्मीदों से जूझते हुए जिन्दगी की सारी चुनौतियाँ स्वीकारता है। पिता ने माँ के स्नेह की पूर्ति करने की भरपूर कोशिश की, पर माँ न बन पाया। प्यार में कोई बंटवारा न हो इसलिए दूसरी शादी तक नहीं की । पर जो अभाव की दरारें सकीना के दिल पर उकरीं, उन्हें वक्त भी न भर पाया । जैसे–जैसे वह बड़ी होती रही वैसे–वैसे उसे यह आभास होने लगा कि बिछड़ने की पीड़ा और मिलन की मिठास क्या होती है ? और इन अहसासों को नारी मन बाँटना चाहता है, पर किससे ? कौन था जो उसकी सुनता, उसकी आँखों में बसे दर्द को टटोलता, अपने आंचल से उसकी नम आँखों को सोखता?

वह निश्चित रूप से यह जानती थी कि पिता के सिवा उसकी भलाई चाहने वाला कोई और नहीं । सारी जायदाद, जमीन, मकान तक गिरवी रखे हुए थे। शायद माँ की बीमारी ने पिता को कर्ज की तहों में दफ्न कर दिया था । बावजूद इसके वह बेटी पर अपना प्यार निछावर करता रहा । कितनी रातें जागकर, कितने दिन कष्टों में गुजारकर उसने सकीना को बड़ा किया। जितना हो सका उसे तालीम दिलाई, पर अपनी टूटती हुई कश्ती को पार पहुँचाने में असमर्थ रहा।

सकीना को पिता का प्यार मिला, इससे इनकार नहीं। शबनमी सौंदर्य उसके चेहरे पर जगमगा रहा था, पर वह कली कैसी? जिसकी मुस्कान में महक न हो, जिसके आगे पीछे कोई भंवरा न मंडराए? जिसे अपने होने का अहसास ही न हो, अपनी किस्मत पर भी भरोसा न हो ? बच्चा हो और माँ न हो, इस खालीपन ने उसके हृदय के खालीपन को कभी भरने ही नहीं दिया।

अठारह साल की दहलीज पार करते ही, सकीना के दिल का सुकुमार कमल दुनिया की फजाओं की चहल–पहल, अपने आसपास की रौनकों की गर्मी पाकर कुछ अंकुरित होने लगा । उस पर रंगत आनी अभी बाकी थी । अपने ही खयालों में डूबी वह रोज जहां समुद्र के किनारे सैर करने जाती, वहीं दूर खड़ा 'आदम' नाम का एक नौजवान हर रोज उसकी सुन्दरता को निहारता, रसपान करता, सराहता, और निहाल होता। एक दिन सकीना की नजर 'आदम' की नजर से टकराई । कुदरत का नियम

अटूट है – समयानुसार धरती में बोए बीज भी पानी पाकर अंकुरित होते है, ऐसा ही एक नाजुक विस्फोट सकीना के दिल में हुआ। उसके दिल की धड़कन बढ़ी जब एक दिन उसके बहुत करीब आकर आदम ने कहा – 'मुझसे शादी करोगी ?'

'...........'

'मुझे तुम्हारी हामी का इन्तजार रहेगा, खुदा हाफिज...।'

दो किनारों के बीच का फासला बना रहा। सकीना ने मन ही मन आदम के प्रस्ताव के दामन को अपनी चुनरी बना ली, जिसे ओढ़कर वह मन से जीवन की प्यार भरी फुलवारी में अपना पहला कदम रख चुकी थी।

जीवन एक संघर्षमय चुनौती है जिसे स्वीकारना इन्सान की नियति बन जाती है । कुदरत को भी जैसे कुछ और ही मंजूर था । 'मन्सूर' उसी शहर की दरगाह का मुजावर था, जिसका भतीजा 'आलम' शौकीन मिजाज और रंगीन तबीयत वाला था । मन्सूर के कर्जों तले दबा सकीना का पिता अब कर्ज चुकाने में असमर्थ–सा हो गया था। दबाव के कारण तमाम जागीर, मकान नीलाम करने पर भी कर्ज का भुगतान नामुमकिन साबित हुआ। बचने की एक ही राह सामने खुली थी – वह थी सकीना !

एक दिन मौका पाते मन्सूर ने अपना पहला तीर फेंका – 'क्या सोच रहे हो मियाँ, इस बढ़ती उम्र में क्या अकेले ही कर्ज का... बेटी का... इतना सारा बोझ ढो पाओगे?'

'नीलामी से अगर किसी तरह भरपाई होती है तो मैं उसके लिये तैयार हूँ ।' सकीना के पिता ने जैसे रिहाई की दरख्वास्त की !

'सकीना की शादी अगर आलम से हो जाती है तो सब कुछ नीलाम होने से बच सकता है, दूसरी सूरत में नीलामी के पश्चात तुम दोनों बाप–बेटी को दर–दर की ठोकरें नसीब होंगी।'

(लघु कथा)

नई सोच

✍ अर्चना ठाकुर

रवीन्द्र के माता पिता के आकस्मिक देहावसान के पश्चात निसंतान दंपति चाचा चाची की देख रेख में वह पला। अब अच्छी नौकरी के पश्चात वे दोनों उसकी शादी का सपना देख रहे थे।

'रवीन्द्र! मथुरा वाले शाम को आ रहे है तुमसे मिलने, जरा जल्दी आ जाना आज दफ्तर से।' चाची ने कहा और शाम तक बहुत तैयारियों के साथ ढेरों आँखों ने देर तक रवीन्द्र का इंतजार किया पर वो तब आया जब ऊब कर मथुरा निवासी मथुरा को रवाना हो गए।

चाची ने सोचा वह व्यस्त रहा होगा। फिर रिश्ता देखा गया, लेकिन रवीन्द्र फिर नहीं आया। अब चाचा चाची के कान खड़े हो गए कि जरूर कुछ गड़बड़ है। कहीं कोई चक्कर–वक्कर तो नहीं! अब बहुत हो चुका – शाम को बात करनी ही पड़ेगी।

'रवीन्द्र क्या बात है– तू अपनी शादी में रुचि क्यों नहीं ले रहा– देखो मथुरा वाले साजों सामान के साथ कैश भी दे रहे है, और इटावा वाले वो तो कैश के साथ गाड़ी भी देने को खुद ही राजी है – और देख अगर तेरा कोई चक्कर–वक्कर है तो भूल जा – हम इसकी कभी मंजूरी नहीं देंगे – अब अपनी मंशा तू बता दे।'

रवीन्द्र बड़ी सहजता से कहता है– 'मेरा कोई प्रेम–व्रेम का चक्कर नहीं है।'

इतना सुनते भर से दोनों के उखड़े चेहरे कुछ सधे।

'पर मैं बिकना भी नहीं चाहता, आप कोई अनाथ लेकिन अच्छी लड़की देख कर बताए मैं सहर्ष उससे विवाह कर लूँगा।' ये सुनते ही दोनों के पैरों तले जैसे जमीन ही सरक गई। चाची की कार के शीशे टूट गए, चाचा जी के नोटों की गद्दी में आग लग गई नई सोच के अंधड़ से।

बाप बेचारा जहर के प्याले पीता तो कितने ? जिंदगी की बाजी वह हार चुका था। दांव पर द्रोपदी की तरह उसके जिगर का टुकड़ा बेटी सकीना थी, जिसकी खुशी के लिये उसने अपना घर नहीं बसाया। वह किस तरह उसे बेघर होते हुए देख सकता? पिता ने माँ बनकर जवाबदारी निभाने का प्रयास किया और अब सर पर लटकती तलवार से खुद को बचाने की खातिर सकीना भी उनसे विमुख नहीं हो सकती। सकीना ने खुद को मंझधार में पाया। दो नौकाओं पर सवार होकर न तो वह खुद पार पहुँच पाती और न ही पिता को डूबने के लिये किनारे पर अकेला छोड़ पाती ।

दिल की निखरती कली जमाने के गर्दिश की धूप में कुम्हलाने लगी । आदम उसके दिल की धड़कन था और आलम उसकी दुनिया का खरीदार । भगवान भी किसी को सौंदर्य की दौलत से मालामाल करता है तो किसी को पैसे की दौलत से मालामाल कर देता है। निश्चय करना मुश्किल था पर नामुमकिन नहीं । सकीना ने पिता की पाक मुहब्बत पर अपने दिल की धड़कन कुरबान कर दी।

शादी हो गई पर आबादी के आसार नजर नहीं आए। आलम एक रंगीन मिजाज बांवरा भंवरा, पैसों की झनकार से सोए हुए जमीरों को जगा देता, या कभी नशे की मदहोशी में रक्स करते लोगों को सुला देता। वक्त पड़ते जब उसको बाप बनने का मौका नहीं मिला तो वह सकीना पर अपने गुस्से के अंगारे बरसाने लगा, चाबुकों की मार से उसकी कोमल काया को लहूलुहान करता रहा। लेकिन सकीना की जबान पर जाने क्यों खामोशी के पहरे रहे ? खुद को बांझ कहलवाने से वह मौत को गले लगाना ज्यादा पसंद करती । आलम की मार उसकी साँसों को तन से जुदा न कर सकीं, पर वह एक निराश, बेबस, बेपर पंछी की तरह बाद कफस में सांसें लेती रही।

इसी दौरान उसका पिता भी इस फानी दुनिया से कूच कर गया । मजबूरी के हर बन्धन से खुद तो आजाद हो गया, पर सकीना के मन को कैद से रिहाई न दिला पाया ।

एक दिन सकीना से मिलने आदम आया और उसे दिलासा देता रहा।

'सकीना तुम अपने आप को कभी अकेला मत समझना! कभी कोई जरूरत हो तो आवाज देना...!' कहते हुए आदम ने अपनी नजरें जमीन में गाड़ दीं। सकीना अपने पिता के गम में वैसे ही बेहाल हुई जा रही थी, आदम के स्वर में अपनेपन के अहसास को महसूस करते, वह बहुत छटपटाई, रोई । वह अपनी चौखट की मर्यादा की सीमा जानती थी, इसलिए उसने आदम से वचन लिया कि वह उसकी शादी–शुदा जिन्दगी में दखल न दे तो बेहतर होगा। प्यार करने वाले मर मिटने का जज्बा लिये फिरते हैं। आदम भी ऐसे ही एक परवाने की तरह जलता रहा, पिघलता रहा, पर अपने वचन की सीमाओं का उलंघन नहीं किया।

जिन्दगी में हादसे तो होते हैं, पर जो करिश्मे होते हैं वे भी अपने आप में बेमिसाल होते हैं। जो सकीना अपनी माँ की ममता के लिये पल–पल तरसी, अपने माँ न होने के जहर को निरन्तर पीती रही, वह जहर अमृत बना और उसके गर्भ में जीवन का नवअंकुर पलने लगा । वह बाँझ न थी, वह माँ थी !!

'सकीना यह बच्चा मर चुका है, जिसकी अमानत थी, उसे मिल गई है ।' मिली–जुली आवाजें उसे होश में लाने की नाकाम कोशिशें करतीं रहीं। शिशु को छाती से लगाए, अपनी ममता की छाँव में सोए बालक को जैसे लोरी सुनाते–सुनाते वह खुद भी सो गई। परिंदा पैरों में पड़े रेशम के हर बंधन से आजाद हो गया, हर दर्द से दूर, हर गुलामी के बन्धन से मुक्त!

आलम ने पिता बनने की खुशी में जो शादमाने और जश्ने–बहारों की महफिलें सजाईं, वे सब मातम में बदल गईं। खुशियों का नकाब ओढ़े हुए गम की धारधार चोट से वह खुद को बचा न पाया। शायद हकीकतों से नाता टूटने का आभास रहा, उसे सबकुछ फानी लगने लगा। उसकी रूह जैसे सकीना के तन के साथ उसकी कब्र में दफन हुई हो, फिर भी पल–पल आलम का तन अपने बेटे की याद में एक तड़प का दरिया बनकर एक धधकती अनबुझी प्यास अपने सीने में लिये बहता रहा, बहता रहा !

कहानी

ढोंग

संदीप सृजन

संपादक
'शब्द प्रवाह'
उज्जैन, म.प्र.

राकेश ! आज तीन दिन हो गये हैं, चुन्नु का बुखार उतर नहीं रहा है। सारी डाक्टरी जांचे भी नार्मल है। मैंने इंदौर वाली कमला मौसी से पूछा तो उन्होंने कहा है कि चुन्नु को हाफिज सा. की दरगाह पर ले जा वहाँ से वह ठीक हो जायेगा, कोई नजर वजर होगी तो निकल जाएगी। एक सांस में रेखा इतना सब बोल गयी कि मैंने चुप रहने में ही भलाई समझी क्यों बेटे की तबियत का मामला था, इसलिए धीरे से बोला ठीक है. अभी 9 वाली बस से चलते हैं।

हाफिज सा. की दरगाह इंदौर और सांवरे के बीच धरमपुरी कस्बे में थी। मैंने भी उस जगह के बारे में सुन रखा था लेकिन जाने का काम नहीं पड़ा था। 9 बजे वाली बस में रेखा, चुन्नु और मैं हम तीनों धरमपुरी के लिए रावना हो गये हुए। करीब डेढ़ घंटे के सफर के बाद धरमपुरी पहुंचे और वहाँ से ऑटो कर के हाफिज सा. दरगाह तक पहुँचे, सामने देखा तो एक बड़ा सा चबुतरा बना है, जिस पर एक दरगाह और पास ही एक नाटे कद का आदमी बैठा है, जो आने वाले लोगों को मोर पंख झाड़ता दिखाई दे रहा था, चारो और बहुत बड़ा दालान बना हुआ है।

दरगाह परिसर में जाते ही एक व्यक्ति ने हम लोगों से वजु बनाने को कहा, तो मुझे थोड़ा अचंभा हुआ क्योंकि मैं हिन्दू हूँ इसलिए इस्लाम के कायदों से ज्यादा निकटता नहीं हैं। खैर हमने पास में लगे नल पर हाथ पैर–धोए और मैंने अपने सर पर रूमाल बांधा, चुन्नु के सर पर भी रेखा ने रुमाल बाँधा और अपना सिर भी साड़ी से ढका टोकरी दरगाह के पास बैठे उस व्यक्ति को दी, इसी बीच मेरी नजरें उस व्यक्ति से टकराई, मैं चौंक गया अरे ये तो मोहन है जो कभी मेरे साथ पढ़ता था। उसने भी मुझे देख लिया। उसने टोकरी से चादर निकाली और दरगाह पर चुन्नु के हाथों चढ़वाई। रेवड़ी की थैली में से थोड़ी रेवड़ी निकाल कर पास ही में रखे लोबान की धुनी में अगरबत्तियाँ डाली और मुझे इत्र की शीशी देकर दरगाह पर छिड़कने का इशारा किया। मैंने इत्र दरगाह पर छिड़क दिया और दरगाह पर सलाम पेश किया. मोहन ने चुन्नु को मोर पंख से झाड़ दिया और बोला बाहर बैठो मैं आ रहा हूँ, जाना मत। हम लोग बाहर आकर दलान में बैठे मोहन के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी बीच मैं अपनी पुरानी यादों की दुनिया में खो गया। मोहन और मैंने इंदौर के होल्कर कालाज में एक साथ पढ़ाई की थी। हम दोनों तीन साल तक साथ पढ़े हैं। हालांकि उसकी और मेरी दोस्ती तो नहीं थी लेकिन साथ पढ़ते थे इसलिए एक दुसरे को अच्छी तरह से पहचानते जरूर थे। मोहन की आर्थिक स्थिति उस समय अच्छी नहीं थी, वह अक्सर दोस्तों से उधार लेकर अपना काम चलाता था, धरमपुरी का ही रहने वाला और नीची जाति से था, लेकिन पढ़ाई में अच्छा था। मैं पुरानी यादों में खोया था कि अचानक मोहन आ गया और बोला– चलो घर चलते हैं। हम लोग मोहन के घर पहुंचे, उसका घर देखकर में आश्चर्यचकित हो गया, बंगलानुमा उसका घर बड़े शहरों के पाँच सितारा होटलों को भी मात दे रहा था। उसने हमें ड्राईंग रूम में बैठाया और पुछा क्या हुआ बेटे को ? मैंने सारी बात बताई तो वह बोला– ठीक है इसे इंदौर ले जाकर किसी अच्छे डॉक्टर को दिखाओ। यहाँ कुछ नहीं होना है। लेकिन मोहन...मैं पूरी बात बोल भी नहीं पाया था कि उसने मुझे रोकते हुए कहा मोहन नहीं मैं मोहम्मद हुसैन हूँ। मैंने आश्चर्य से उसकी तरफ देखा तो वो बोला हाँ भाई मोहम्मद हुसैन नाम है मेरा और इसी बीच में उसकी

पत्नी भी वहीं आ गयी, मुझे परिचय करवाते हुए बोला– ये मेरी बीवी तबस्सुम और ये मेरा साथी है रकेश और उसकी पत्नी। इन्हें चाय–नाश्ता तो करवाओ।

मैं आश्चर्य से उसे देखे जा रहा था और सोच रहा था कि वह हिन्दू से मुसलमान क्यों बना और ये दरगाह की मुजावरी क्यों कर रहा है ?

तभी वह बोला– दोस्त जिन्दगी में ऐसी भी स्थितियाँ आती हैं, जो सब कुछ करने को मजबूर कर देती हैं। और पैसा पाने के लिए वह सब करना होता है जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

– मैं समझा नहीं?

बोला– तुम्हारे साथ में मैंने बी.एससी. की पढ़ाई की, इसी दौरान मेरे बाबूजी और अम्मा की एक एक्सीडेंट में मौत हो गयी। बाबूजी दिहाड़ी मजदूरी कर के घर चलाते थे। मैंने भी पढ़ाई के दौरान इंदौर में एक कम्प्यूटर ट्रेनिंग सेंटर में नौकरी कर ली थी। बाबूजी और अम्मा के जाने के बाद मैं अकेला रह गया। मैं रोजाना घर से इंदौर अप–डाउन करता था। कम्प्यूटर ट्रेनिंग सेंटर पर ही मेरी मुलाकात तबस्सुम से हुई। तबस्सुम बेहद गरीब मुस्लिम परिवार से है, यह मुलाकात महज छः महीनों में प्यार में बदल गयी, मैंने तबस्सुम के सामने शादी की बात रखी, वह तैयार थी मगर डरती भी थी, क्योंकि दोनों अलग–अलग धर्मों से थे और उसे कहीं भगा कर ले भी गया तो हमारी जान खतरे में पड़ सकती थी। मैंने तबस्सुम से कहा चलो मैं तुम्हारे अब्बा से बात करता हूँ।

तभी तबस्सुम हमारे लिए चाय नाश्ता लेकर आ गयी और रेखा के पास बैठकर हमें चाय देने लगी। बातचीत का सिलसिला फिर शुरू करते हुए मोहन बोला– मैं एक रोज तबस्सुम के साथ उसके घर गया। अब्बा से मिला और हमारे प्यार की बात उन्हें बताई, तबस्सुम के अब्बा आधुनिक विचारधारा वाले हैं इसलिए पहले तो खुश हुए मगर समाज के विरोध के डर से वे भी कुछ बोल नहीं पाए। उनकी मजबूरी मैं समझ रहा था, मैंने उनसे कहा कि मैं इस्लाम कबूल करने को तैयार हूँ. बस अप हमारी शादी के लिए मंजूरी दे दीजिए। मेरे इस फैसले पर अब्बा और तबस्सुम दोनों मुझे आश्चर्य से दखने लगे, क्योंकि मैंने यह बात तबस्सुम से भी नहीं कही थी।

मैं अकेला था, रिश्तेदारों से मुझे कोई लगाव नहीं थी। समाज से कोई विशेष जुड़ाव नहीं था, धार्मिक आस्था भी नहीं थी, इसलिए मैं प्यार को पाने के लिए धर्म परविर्तन करना उचित मान रहा था, और वही मैंने किया। धर्म परिवर्तन कर मैं मोहन से मोहम्मद हुसैन बन गया। अब्बा ने इंदौर में हमारा निकाह करवा दिया और तबस्सुम को मेरे साथ धरमपुरी भेज दिया। धरमपुरी में बाबूजी मेरे लिए केवल एक मकान ही छोड़ गये थे, जो मैंने तबस्सुम को सुपुर्द किया। मैं रोज इंदौर उप–डाउन करता। तबस्सुम घर संभालती। एक दिन अचानक इन्टरनेट पर धर्म के नाम पर हो रहे ढोंग का समाचार पढ़ा और इससे सम्बंधित ढ़ेरों वाक्ये पढ़े जिनमें आम आदमी किस तरह लुटाता है। मेरे अन्दर कभी कोई धार्मिक आस्था नहीं थी, मंदिरों, दरगाहों पर जाता रहा हूँ मगर सिर्फ घूमने के उद्देश्य से, और वहाँ की व्यवस्थाओं और नाटकों को देखने के लिए। इन्टरनेट पर इस बारे पढ़कर मेरे मन में भी विचार कौंधा क्यों न गाँव से कुछ दूर स्थित हाफिज सा. के दरगाह का कुछ फायदा उठाया जाए। मैंने वहाँ जाना शुरू किया और वहाँ आने–जाने वाले लोगों को मोर पंख से झाड़ने लगा। जिससे लोग मुझे मुजावर मानने लगे। वहाँ आने वाले लोग तरह–तरह की मन्नतें माँग कर जाते और किसी की कोई मन्नत पूरी या बिमारी दूर हो जाती तो वह आकर मन्नत पूरी करता और मुझे भी सत्कार, सम्मान, कपड़े और नगदी भेट कर के जाता। मुझे इससे लाभ होने लगा, मेरा ढोंग का धंधा चल निकला। मैंने एक दिन वहाँ आने वाले लोगों के बीच कहा कि हाफिज सा. मेरे सपने में आए और उन्होंने इस जगह को भव्य बनाने का आदेश दिया है। मुझे आपका साथ चाहिए, यह बात हवा में उड़ती हुई मुसलामानों तक पहुँच गयी और देखते ही देखते चंदे में लाखों रूपये इक्कठे हो गए, हिन्दुओं ने भी इसमें योगदान दिया। मेरा उद्देश्य प्रारंभ से ही पैसा कमाना रहा है और मुझे मेरा उद्देश्य पूरा होता नजर आया। मैंने इंदौर की नौकरी छोड़ कर पूरा समय दरगाह पर देना शुरू किया और शानोशोकत की जिन्दगी जीने का निर्णय लिया। पहले भी मेरी कोई आस्था नहीं थी और आज भी नहीं है। हिन्दू हूँ या मुसलमान मैं खुद नहीं जानता। तुमने जो दरगाह के आस–पास देखा वह और यह मकान इन्हीं आस्थावान लोगों की अंधश्रद्धा की देन है। आज दस साल से अपना पेट भरने के लिए सारा ढोंग कर रहा हूँ। कई लोग आते हैं, कुछ लोग अच्छे हो जाते हैं कुछ नहीं भी होते। जो लोग इलाज करवा कर भी

अच्छे हुए वे भी इसे हाफिज सा. की मेहरबानी मानकर मेरे कहे अनुसार चढ़ाव चढ़ाते और खुशी–खुशी घर जाते। मेरे दोस्त! धर्म के नाम पर आज चारों तरफ धंधा हो रहा है और हर कोई अपना पेट और पेट भरने में लगा है। तुम मंदिरों और दरगाहों का चक्कर छोड़ो और अपने बेटे को इंदौर लेजाकर किसी अच्छे डॉक्टर को दिखाओ।

धर्म के नाम पर धंधे की बात सुन मुझे आश्चर्य तो हो रहा था पर इस बात की संतुष्टि थी कि मैं इस ढोंग में फंसने से बच गया और बेटे का सही इलाज करवा पाया।

लघु कथा

सड़ा बीज

आनंद बिल्थरे

– मैं, अबोर्शन करना चाहती हूँ!
– क्यों ?
– मेरा फिगर खराब हो जायेगा। फिगर के साथ ही तो मेरा माडलिंग का भविष्य जुड़ा है।

– अब क्या हुआ ?
– मुझे बच्चा चाहिए।
– जाकर गोद ले लो!
– नहीं मुझे अपना बच्चा चाहिए।
– और फिगर?
– अब मैं माडलिंग की दुनिया में मिसफिट हूँ।

– जीवन संध्या से बड़ा डर लगता है।
– हूँ।
– काश, हमारा कोई बेटा होता?
– बेटा न सही, बेटी ही होती।
– बीज, अपने आप को गलाकर ही, पौधे को जन्म देता है कामिनी! तुमने वर्षों तक, सोने कि डिबिया में बीज को छिपा कर रखा। अब, वह सड़ने लगा है, और सड़ा बीज कभी अंकुरित नहीं होता।

.... दोनों, चुपचाप एक–दूसरे की ओर पीठ करके, सोने का अभिनय करने लगे।

लघु कथा

फितरत

शबनम शर्मा

पिछले माह मुझे मिसेज गुरुंग के घर जाने का मौका मिला। रात गहरा गई थी। मौसम भी बहुत अच्छा था। सर्दी के साथ–साथ अच्छा खाना, सूखे मेवे व गरमा–गरम चाय–कॉफी ने समय बांध दिया था। हम दोनों ड्राईंग रूम में बैठे बतिया ही रहे थे कि उनकी दोनों लड़कियाँ अपने बच्चों के साथ घर में आ गईं। आते ही पर्स इधर फेंका, शाल कुर्सी के कोने पर टंगा दी और जूते अस्त–व्यस्त रख दिये, बच्चों ने अपना पूरा धमाल शुरु कर दिया। घर का माहौल क्षण भर में ही बदल गया। बच्चे रसोई की तरफ दौड़े, बोलते हुए, ''मामी जी भूख लगी है कुछ खाने को दो।'' लड़कियाँ भी आवाजें लगाने लगी, ''अरे, भाभी एक–एक कप चाय, पकौड़े हो जायें।'' बेचारी भाभी ''हां जी'' बोलकर रसोई की तरफ भागी। आध घंटे में सबकी फरमाइशें पूरी करके दस व्यक्तियों के खाने की तैयारी करने लगी। पता चला उसे चौथा महीना चल रहा है, पर किसी को भी परवाह नहीं। मुझसे रहा न गया। पूछ ही बैठी, ''मिसेज गुरुंग आपने लड़कियों की शादी लोकल की और ये जब–तब आएँ तो इससे काम नहीं बढ़ जाता, देखो दोनों जब से आई हैं, एक फोन पर, दूसरी टी.वी. के आगे और बच्चे धमाल किये हुए हैं, इससे बहू–बेटे के जीवन पर क्या असर पड़ेगा।'' उन्हें मेरी बात जरा न भाई। तपाक से बोलीं, ''मिसेज शर्मा, दोनों कमाती हैं, हर माह मेरे हाथ पर अच्छे पैसे रखती हैं। आखिर इन्हें पाला, पढ़ाया–लिखाया। शादी करके बेचा तो नहीं, इनका घर है जब चाहें आएँ–जाएँ, ससुराल में तो खटती ही है, यहाँ भी काम करें तो मायका क्या?'' मैंने पूछा, ''फिर इनके घर पर कौन देखभाल करता है?'' वह नाक–भौं तरेरकर बोली, ''इनकी माएें यानि सासें और ननदें।'' मैं हैरान थी ये सब देख–सुनकर कि मेरी नजर उनकी बहू पर पड़ी जो 1–1) किलो आटा गूंथ रही थी। मुझे उसकी तरफ देखते ही मिसेज गुरुंग बोली, ''गरीब घर की है, बाप भी नहीं, माँ है भाई के साथ रहती है। जान–बूझकर लाये इसे, घर का काम तो करे और दो रोटी खाती रहे व पड़ी रहे।'' मेरे लिये अब रुकना मुहाल हो गया इस फितरती माहौल में। मैं उठी और भारी कदमों से घर वापिस आ गई।

– अनमोल कुंज, पुलिस चौकी के पीछे, मेन बाजार, माजरा, तह. पांवटा साहिब, जिला सिरमौर, हि.प्र. – 173021

कलम को नमन

रेल की रात

कहानी

इलाचंद्र जोशी

गाड़ी आने के समय से बहुत पहले ही महेंद्र स्टेशन पर जा पहुँचा था। गाड़ी के पहुँचने का ठीक समय मालूम न हो, यह बात नहीं कही जा सकती। जिस छोटे शहर में वह आया हुआ था, वहाँ से जल्दी भागने के लिए वह ऐसा उत्सुक हो उठा था कि जान–बूझ कर भी अज्ञात मन से शायद किसी अबोध बालक की तरह वह समझा था कि उसके जल्दी स्टेशन पर पहुँचने से संभवतरू गाड़ी भी नियत समय से पहले ही आ जायगी।

होल्डाल में बँधे हुए बिस्तरे और चमड़े के एक पुराने सूटकेस को प्लेटफार्म के एक कोने पर रखवा कर वह चिंतित तथा अस्थिर–सा अन्यमनस्क भाव से टहलते हुए टिकट–घर की खिड़की के खुलने का इंतजार करने लगा।

महेंद्र की आयु बत्तीस–तैंतीस वर्ष के लगभग होगी। उसके कद की ऊँचाई साढ़े पाँच फीट से कम नहीं मालूम होती थी। उसके शरीर का गठन देखने से उसे दुबला तो नहीं कहा जा सकता, तथापि मोटा वह नाम का भी न था। रंग उसका गेहुँआ था, कपोल कुछ चौड़ा, भौंहें कुछ मोटी किंतु तनी हुई, आँखें छोटी पर लंबी, काली मूँछें घनी पर पतली और दोनों सिरों पर कुछ ऊपर को उठी थीं। वह खद्दर का एक लंबा कुरता और खद्दर की धोती पहने था। सर पर टोपी नहीं थी। पाँवों में घड़ियाल के चमड़े के बने हुए चप्पल थे। उसके व्यक्तित्व में आकर्षण अवश्य था, पर वह आकर्षण सब समय सब व्यक्तियों की दृष्टि को अपनी ओर नहीं खींचता था।

सूरज बहुत पहले डूब चुका था और शुक्ल पक्ष का अपूर्ण गोलाकार चंद्रमा अपने किरण–जाल से दिग्–दिगंत को स्निग्ध आलोक–छटा से विभासित करने लगा था। स्टेशन पर अधिक भीड़ न थी। प्लेटफार्म पर टहलते–टहलते पूर्व की ओर कदम निकल जाने पर ऐसा मालूम होने लगता था कि चाँदनी दीर्घ–विस्तृत समतल भूमि पर अलस क्लांति की तरह पड़ी हुई है। झिल्ली–झनकार का एकांतिक मर्मर स्वर इस अलसता की वेदना को निर्मम भाव से जगा रहा था, जिससे महेंद्र के हृदय की सुप्त व्याकुलता तिलमिला उठती थी।

सिगनल डाउन हो गया था। टिकट–घर खुल गया था। थर्ड क्लास का टिकट खरीद कर महेंद्र गाड़ी का इंतजार करने लगा। थोड़ी देर में दूर ही से सर्चलाइट के प्रखर प्रकाश से तिमिर–विदारण करती हुई गाड़ी दिखाई दी और झक्–झक् करती हुई स्टेशन पर आ खड़ी हुई।

सामने के कंपार्टमेंट में केवल दो व्यक्ति बैठे थे और वे भी उतरने की तैयारी कर रहे थे। महेंद्र एक हाथ में बिस्तर की गठरी और दूसरे हाथ से सूटकेस पकड़ कर उसी में जा घुसा। जो दो व्यक्ति कंपार्टमेंट में थे, उनके उतरते ही एक चश्माधारी सज्जन ने दो महिलाओं के साथ भीतर प्रवेश किया। कुली ने आ कर नवागंतुक महाशय का सामान भीतर रख दिया और मजूरी के संबंध में काफी हुज्जत करने के बाद पैसे ले कर चला गया। चश्माधारी सज्जन महिलाओं के साथ महेंद्र के सामने वाले बेंच पर बड़े आराम से बैठ गए। मालूम होता था कि वह बड़ी हड़बड़ी के साथ गाड़ी के आने के कुछ ही समय पहले स्टेशन पहुँचे थे और

घबराहट में थे, कि महिलाओं को साथ ले कर यदि किसी कंपार्टमेंट में जगह न मिली, तो क्या हाल होगा। वह अभी तक हाँफ रहे थे, जिससे उनकी अब तक की परेशानी स्पष्ट व्यक्त होती थी। अब जब आराम से बैठने को खाली जगह मिल गई, तो एक लंबी साँस ले कर चश्मा उतार कर रूमाल से मुँह का पसीना पोंछने लगे। पसीना पोंछते–पोंछते महेंद्र की ओर देख कर उन्होंने प्रश्न किया, 'शिकोहाबाद कै बजे गाड़ी पहुँचेगी, आप बता सकते हैं?'

महेंद्र ने उत्तर दिया, 'जहाँ तक मेरा ख्याल है, बारह बजे के करीब पहुँचेगी।'

महेंद्र कनखियों से महिलाओं की ओर देख रहा था। महिलाएँ उसके एकदम सामने बैठी थीं और यदि दृष्टि सीधी करके स्वाभाविक रूप से उन्हें देखता रहता, तो भी शायद न तो चश्माधारी सज्जन को और न महिलाओं को कोई आपत्ति होती, पर उसे अपनी स्वाभाविक संकोचशीलता के कारण उनकी ओर स्थिर दृष्टि से देखने का साहस नहीं होता था। दोनों महिलाएँ बेपर्दा बैठी थीं। उनमें एक की अवस्था प्रायः पैंतीस वर्ष की होगी, वह एक सफेद चादर ओढ़े खड़ी थी, दूसरी बाईस–तेईस वर्ष की जान पड़ती थी, वह एक गुलाबी रंग की सुंदर, सुरुचिपूर्ण साड़ी पहने थी। दोनों यथेष्ट सभ्य और सुशील जान पड़ती थीं। ज्येष्ठा के देखने से ऐसा अनुमान लगाया जा सकता था कि किसी समय वह सुंदर रही होगी, पर अब अस्वस्थता के कारण उसका मुखमंडल बिलकुल निस्तेज जान पड़ता था। कनिष्ठा यद्यपि सौंदर्य–कला की दृष्टि से सुंदरी नहीं थी, तथापि उसके मुख की व्यंजना में एक ऐसी सरल मधुरिमा वर्तमान थी, जो बरबस आँखों को आकर्षित कर लेती थी।

आज कई कारणों से महेंद्र का जी दिन भर अच्छा नहीं रहा। गाड़ी में बैठने तक वह चिंतित, अन्यमनस्क तथा उदास था। पर गाड़ी में बैठते ही शिष्ट, सुशील तथा सुंदरी महिलाओं के साहचर्य से उसके खिन्न मन में एक सुखद सरलता छा गई। यद्यपि वह संकोच के कारण कुछ कम घबराया हुआ न था, तथापि चश्माधारी सज्जन की भोली आकृति तथा सरल भाव–भंगिमाओं से और महिलाओं की शालीनता से उसे इस बात पर धीरे–धीरे विश्वास होने लगा था कि उनके बीच किसी प्रकार का संकोच अनावश्यक ही नहीं बल्कि अशोभन भी है।

चश्माधारी सज्जन ने चश्मा उतार कर एक रूमाल से उसे पोंछते हुए पूछा, 'आप क्या शिकोहाबाद जा रहे हैं?'

'जी नहीं, मैं दिल्ली जा रहा हूँ। क्या आप शिकोहाबाद में ही रहते हैं?'

'जी नहीं, मुझे टूँडला जाना है। मैं वहाँ कोर्ट में प्रैक्टिस करता हूँ। इधर कुछ दिनों के लिए घर आया हुआ था। अब अपनी वाइफ को और सिस्टर को ले कर वापस जा रहा हूँ। सिस्टर की तबीयत ठीक नहीं रहती, इसलिए उसे हवा–बदली के लिए ले जा रहा हूँ।'

एक साधारण–से प्रश्न के उत्तर में इतनी बातों से परिचित होने पर महेंद्र को नवपरिचित सज्जन की बेतकल्लुफी पर आश्चर्य हुआ और वह मन ही मन मुस्कराने लगा। उसने अनुमान लगाया कि ज्येष्ठा महिला 'सिस्टर' होगी और कनिष्ठा 'वाइफ'।

थोड़ी देर में गाड़ी चलने लगी। कोई दूसरा यात्री उस डिब्बे में न आया।

चश्माधारी महाशय गाड़ी चलने के कुछ देर बाद ऊँघने लगे। वे रह न सके और बँधे हुए बिस्तर को तकिया बना कर एक दूसरे बेंच पर लेट गए और लेटते ही खर्राटे लेने लगे। न जाने क्यों, महेंद्र के मन में यह विश्वास जम गया कि इन नवपरिचित महाशय का जीवन बड़ा सुखी है। उनकी बेतकल्लुफी तथा उनके मुख का आत्म–संतोषपूर्ण भाव देख कर उनके मन में यह विश्वास जमने लगा था और जब उसने उन्हें निश्चिंत सोते हुए तथा खर्राटे भरते देखा, तो उसकी यह धारणा दृढ़ हो गई।

ज्येष्ठा महिला ने भी थोड़ी देर में ऊँघना शुरू कर दिया। वह ऊँघती जाती थी और बीच–बीच में जब जबर्दस्त हिचकोला खाती थी तो जाग पड़ती थी। केवल कनिष्ठा महिला पूर्णतः सजग थी। वह कभी खिड़की के बाहर झाँक कर चाँदनी के उज्ज्वल आलोक में शायद 'पलपल परिवर्तित' प्राकृतिक दृश्यों का आनंद लेती थी, कभी ऊँघनेवाली महिला की ओर देखती थी, कभी खर्राटे भरनेवाले महाशय,

शायद अपने पति को एक बार सरसरी निगाह से देख लेती थी और कभी महेंद्र को स्निग्ध किंतु विस्मय की उत्सुकता से पूर्ण आँखों से देखने लगती थी। उन आँखों की स्थिर दृष्टि जब महेंद्र पर आ कर पड़ती थी तो, उसे ऐसा मालूम होने लगता कि मोहाविष्ट हुआ जा रहा है और उसकी सारी आत्मा, यहाँ तक कि सारा शरीर भी अपना रूप बदल रहा है और यह किसी अव्यक्त तथा अतींद्रिय मायावी स्पर्श से कुछ का कुछ हुआ जा रहा है। वह उस स्थिर दृष्टि का तेज सहन न कर सकने के कारण आँखें फिरा लेता था।

गाड़ी टटर–टट्ट–टटर–टट्ट शब्द से चली जा रही थी। जाग्रत महिला की गुलाबी साड़ी का आँचल हवा के झोंके से नीचे खिसक कर उसके लहराते हुए घनकुंचित काले केशों की बहार दिखा रहा था। गुलाबी साड़ी भी हवा के जोर से फर–फर फहरा रही थी। महेंद्र पूर्ण जाग्रत अवस्था में स्वप्न देखने लगा। उसे यह भी भ्रम होने लगा कि यह महिला, जो इसके पहले उसके लिए एकदम अज्ञात थी और निश्चय ही सदा अज्ञात रहेगी, न जाने किस चिदानंदमय लोक से अकस्मात् आविर्भूत हो कर उसके पास आ बैठी है और गुलाबी रंग की पताका फहरा कर विश्व–विजय को निकली है और वह उसका सारथी बन कर उस अनंतगामी रेल रूपी रथ पर चला जा रहा है। सारा विश्व, समस्त मानवी तथा मानसी सृष्टि उसके लिए उस कंपार्टमेंट के भीतर समा गई थी, जिसमें ऊँघनेवाली महिला तथा सोए हुए सज्जन का कोई अस्तित्व नहीं था, और उसके बाहर क्षण–क्षण में परिवर्तित होनेवाले अस्थिर माया जगत् का चिर चंचल रूप एकदम असत्य सत्ताहीन–सा लगता था।

महेंद्र सोचने लगा कि उसने जीवन में कितनी ही स्त्रियों को विभिन्न रूपों तथा विचित्र परिस्थितियों में देखा है, पर आज का यह बिल्कुल साधारण–सा अनुभव उसे क्यों ऐसा अपूर्व तथा अनुपम लग रहा है। वह सोच ही रहा था कि फिर उस विश्व–विजयिनी ने अपनी सुंदर विस्मित आँखों की रहस्यमयी उत्सुकता से भरी स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा। वह मन ही मन संबोधित करते हुए कहने लगा, चिर अज्ञाता, चिर अपरिचिता देवी! तुम मुझसे क्या चाहती हो। तुम्हारी इस मर्मभेदिनी दृष्टि का क्या अर्थ है? दैवयोग से महाकाल के इस नगण्यतम क्षण में, जिसकी सत्ता महासागर में एक क्षुद्रतम बुदबुदे के बराबर भी नहीं है, हम दोनों का आकस्मिक मिलन घटित हुआ है, और महासागर में बुदबुदे की तरह यह क्षण सदा के लिए विलीन हो जायगा। तथापि इतने ही अर्से में क्या तुम हम दोनों के जन्मांतर के संबंध से परिचित हो गई अथवा यह सब कुछ नहीं है? तुम्हारी आँखों की उत्सुकता का कोई मूल्य नहीं है, मेरी विह्वल भावुकता का कोई महत्व नहीं है! महत्वपूर्ण जो कुछ है, वह है तुम्हारे पास लेटे हुए व्यक्ति का खर्राटे भरना।

शिकोहाबाद पहुँचने पर चश्माधारी सज्जन की नींद न टूटी और ज्येष्ठा महिला ऊँघती रही। पर महेंद्र की विश्व–विजयिनी की आँखों में एक क्षण के लिए भी निद्रा–रसावेश का लेश नहीं दिखाई दिया। वह बीच–बीच में अपनी मर्म–भेदिनी दृष्टि की प्रखर उत्सुकता से उसके हृदय को अकारण निर्मम रूप से बिद्ध करती चली जाती थी। फलस्वरूप महेंद्र की गुलाबी मोहकता भी शिकोहाबाद पहुँचने तक अखंड बनी रही।

शिकोहाबाद पहुँचने पर विश्व–विजयिनी ने चश्माधारी सज्जन के किंचित स्थूल शरीर को हाथ से हिलाते हुए जगाया। ऊँघती हुई महिला भी सँभल कर बैठ गई। कुलियों से सामान उतरवा कर चारों व्यक्ति उतर पड़े। दिल्लीवाली गाड़ी जिस प्लेटफार्म पर लगनेवाली थी, वहाँ को जाने के लिए पुल पार करना पड़ा। पुल पार करके वे लोग जिस प्लेटफार्म पर आए, वहाँ कहीं एक भी बत्ती जली हुई नहीं थी। पर चूँकि सर्वत्र निर्मल चाँदनी छिटक रही थी, इसलिए बत्ती की कोई आवश्यकता न जान पड़ी। गाड़ी के आने में अभी डेढ़ घंटे की देर थी। चश्माधारी महाशय एक बेंच पर बिस्तर फैला कर लेट गए। दोनों महिलाएँ भी नीचे रखे हुए सामान के ऊपर बैठ गईं।

चश्माधारी सज्जन ने महेंद्र से कहा, 'आप भी किसी बेंच पर बिस्तर बिछा कर लेट जाइए।' पर कोई बेंच खाली नहीं थी और न महेंद्र सोने के लिए ही उत्सुक था। आज की रेलवे यात्रा की चंद्रोज्ज्वल रात्रि उसे चिरजाग्रत तथा चिरजीवित स्वप्न–लोक में विचरण का अवसर दे रही थी। वह प्लेटफार्म पर टहलते हुए अपने अंतर्मन में नवोद्घाटित जीवन–वैचित्र्य की चहल–पहल देख कर विस्मित हो रहा था। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि वह जीवन की मधुरिमा से आज प्रथम बार परिचित हो रहा था। रेलवे लाइन के उस पार दिगंत विस्तृत ज्योत्स्ना–राशि अपने आवेश में स्वयं पुलकित हो रही थी और सामने काफी दूर पर दो रक्तरंजित गोलाकार प्रकाश–चिह्न आकाश–दीप की तरह मानो आनंदोज्ज्वल रंगीन जीवन का मार्ग उसके लिए इंगित कर रहे थे। रेलगाड़ी में हो कर वह अनेक बार आया था और गया था और कितनी ही बार उसे रात के समय स्टेशनों पर गाड़ी के इंतजार में ठहरना पड़ा था, पर आज की ऐंद्रजालिक उल्लासपूर्ण अनुभूति उसके लिए एकदम नई थी। इस बार इंद्रजाल के उद्घाटन का श्रेय जिसको था, वह मायाविनी इस समय टीन की छत के नीचे की छाया में बैठी हुई थी और अंधकार में उसकी आँखों के जादू का चलना बंद

हो गया था। पर वहाँ पर मात्र उसका अस्तित्व ही महेंद्र की आत्मा में मायालोक की मोहकता का सृजन करने के लिए पर्याप्त था।

वह टहलते–टहलते न मालूम किन निरुद्देश्य स्वप्नों की माया के फेर में पड़ा हुआ था कि अचानक चश्माधारी महाशय ने बेंच पर से पुकारते हुए कहा, 'अरे जनाब, कब तक टहलिएगा। अगर लेटना नहीं चाहते, तो यहाँ पर बैठ तो जाइए। नींद तो अब आवेगी नहीं। इसलिए गाड़ी के आने तक गप–शप ही रहे।' महाशयजी पहले ही काफी सो चुके थे इसलिए अब नींद नहीं आ रही थी। महेंद्र मुस्कराता हुआ उनके पास अपने सूटकेस के ऊपर बैठ गया।

महाशयजी ने कहा, 'आप दिल्ली में कहीं मुलाजिम हैं?'

'जी नहीं।'

'तब आप क्या करते हैं, आप खद्दर पहने हैं, क्या आप राजनीतिज्ञ हैं?'

'पहले था, अब नहीं के बराबर हूँ।'

'वह कैसे?'

इस प्रश्न के उत्तर में महेंद्र ने परम क्लांति का भाव दिखाते हुए कहा, 'अरे साहब, सुन के क्या कीजिएगा। व्यर्थ में आपके संस्कारों को आघात पहुँचेगा। इस चर्चा को हटाइए और किसी अच्छे विषय की चर्चा चलाइए।'

स्वभावतः चश्माधारी का कौतूहल बढ़ा। उन्होंने आग्रह के साथ कहा, 'फिर भी जरा सुनें तो सही। आखिर कौन–सी ऐसी बात हो गई।'

महेंद्र की सुप्त स्मृतियाँ तिलमिला उठीं थीं। कनखियों से उसने देखा, प्रायः अंधकार में बैठी हुई मायाविनी

महेंद्र की सुप्त स्मृतियाँ तिलमिला उठीं थीं। कनखियों से उसने देखा, प्रायः अंधकार में बैठी हुई मायाविनी महिला का ध्यान उसी की ओर था। पल में उसके मानसिक चक्षुओं के आगे उसके सारे विगत जीवन के व्यर्थता के दुरूखद संस्मरणों की झाँकी चित्रपट पर क्रम से परिवर्तित होनेवाले चित्रों की तरह भासमान होने लगी। भाव के आवेश में आ कर उसने कहा, 'अच्छा तो सुनिए। ग्यारह वर्ष से ले कर तीस वर्ष तक की अवस्था तक गांधी के सिद्धांतों के पीछे पागल हो कर, भूखों रह कर, पग–पग ठोकरें खा कर, समाज तथा परिवार की फटकारें सह कर, जीवन के सब सुखों को अपने ध्येय के लिए तिलांजलि दे कर, राष्ट्रीय आदर्श को ब्रह्मतत्व से भी अधिक महत्व दे कर सच्ची लगन से अपनी सारी आत्मा को निमज्जित करके देश का काम किया। तीन बार काफी अवधि के लिए जेल में सड़ता रहा, बार–बार पुलिस के डंडे सर पर पड़ते रहे। जमीन–जायदाद कुर्क हो गई, माता–पिता अपनी कपूत संतान के कारण तबाह हो कर मानसिक और शारीरिक पीड़ा की पराकाष्ठा भोग कर चल बसे, पत्नी तड़प–तड़प कर अपने भाग्य को कोसती हुई मर गई। फिर भी मैं राष्ट्र से कल्याण के परम ध्येय को स्त्री, परिवार, आत्मा और परमात्मा से बहुत ऊँचा मानता हुआ सच्ची लगन से काम करता रहा। जब अंतिम बार जेलखाने में बंदी मियाद पूरी करने के बाद थका–माँदा मन तथा शरीर से क्लिष्ट और क्लांत हो कर मैं बाहर आया, तब एक–एक करके उन स्नेही जनों की स्मृतियाँ मेरे मन में उदित हो–हो कर व्यक्त होने लगीं, जिनकी मैं सदा अवज्ञा करता आया था। अपनी पत्नी से मैंने जीवन में शायद दो दिन भी घनिष्ठता से बातें न की होंगी। जब मैं बाहर रहता था, तो उसके पत्र बराबर मेरे पास आते रहते थे और मैं सरसरी दृष्टि से पढ़ कर अवज्ञा से फाड़ कर फेंक देता था। एक या दो बार से अधिक मैंने उसके पत्रों का उत्तर नहीं दिया और दो बार जो उत्तर दिया था, वह भी चार पंक्तियों में बिल्कुल रूखे–सूखे ढंग से। अब जब मैं अपने को सारे संसार में अकेला, स्नेह तथा संवेदना से वंचित, असहाय तथा निरुपाय अनुभव करने लगा तो उसकी भोली–भाली, सकरुण, स्नेह की वेदना से भरी सहज सलोनी मूर्ति प्रतिपल मेरी आँखों के आगे भासित होने लगा। उसके पत्रों में सरल शब्दों में वर्णित कातर व्याकुलता के हाहाकार की पुकार मानो मेरी स्मृति के अतुल गह्वर में दीर्घ सुप्ति की घोर जड़ता के बाद अकस्मात जागरित हो कर मेरे हृदय पर जलते हुए अंगारों के गोलों से आघात करने लगी। अपने जीवन में कभी किसी बात पर नहीं रोया था। माता–पिता तथा पत्नी, किसी की मृत्यु पर आँसू की एक बूँद मेरी आँखों से न निकली थी। अब रह–रह कर उन लोगों की याद में बिलख–बिलख कर मैं बार–बार रो पड़ता।

मेरी स्नेहशील पतिपरायण पत्नी की करुण पुण्यछवि उज्ज्वल नक्षत्र की तरह मेरी आँखों के आगे स्पष्ट भासमान होने लगी। रह–रह कर मेरा जी विकल हो उठता था और मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता, जैसे मेरे हृदय में किसी के निष्कलंक सुकुमार प्राणों की पैशाचिक हत्या का अपराध पाषाण–भार की तरह पड़ा हो। बहुत दिनों तक इस नृशंस अपराध की भयंकर अनुभूति का भूत मेरी आत्मा को अत्यंत निष्ठुरता से दबाता रहा। अब भी यह भौतिक आतंक कभी–कभी मेरे मन में जागरित हो उठता है। फिर भी अब मैंने अपने मन को बहुत समझा लिया है और जीवन को एक नई दृष्टि से नए रूप में देखने लगा हूँ और साधारण से साधारण घटना भी कभी–कभी मेरे मन में एक अलौकिक आनंद का आश्चर्य उत्पन्न करने लगती है। किसी स्त्री को देखते ही अब मेरे हृदय में एक श्रद्धा–पूर्ण उत्सुकता का भाव जाग पड़ता है। ऐसा मालूम होने लगता है, जैसे अपने जीवन में पहले स्त्री को देखा भी न हो, अब पहली बार इस आनंददायिनी रहस्यमयी जाति के अस्तित्व का अनुभव मुझे हुआ हो।'

अब मैंने अपने मन को बहुत समझा लिया है और जीवन को एक नई दृष्टि से नए रूप में देखने लगा हूँ

महेंद्र का लंबा लेक्चर समाप्त होते ही चश्माधारी सज्जन 'हा हा' करके ठठा कर हँसते हुए बोले, 'आप भी बड़े मजे के आदमी हैं। खूब!' यह कह कर वह बेंच पर आराम से लेट गए और उन्होंने आँखें बंद कर लीं। थोड़ी देर बाद वह जोरों से खर्राटे लेने लगे।

एक लंबी साँस लेते हुए महेंद्र ने प्रायः अंधकार में अस्पष्ट झलकती हुई गुलाबी साड़ी की ओर देखा। दो आँखों की मार्मिक दृष्टि से तीव्र मोहकता उस अर्द्ध अंधकार में भी विस्मित वेदना की उत्सुक उज्ज्वल रेखाओं को विकीरित कर रही थी। महेंद्र पुलक–विह्वल हो कर मंत्र–मुग्ध–सा बैठा रहा।

घंटी बजी, दिल्ली को जानेवाली गाड़ी के आने की सूचना देते हुए सिगनल डाउन हुआ। सामने रक्त आकाश–द्वीप के बदले हरे रंग का प्रकाश जल उठा। यह हरित आलोक महेंद्र के मानस–पट में साड़ी के गुलाबी रंग के साथ मिल कर एक स्निग्ध–शुचि सौंदर्य–लोक का सृजन करने लगा।

थोड़ी देर में दूर ही से गाड़ी का सर्चलाइट दिखाई दिया। चश्माधारी महाशय महेंद्र के जगाने पर फड़फड़ाते हुए उठे। कुलियों ने सामान सँभाल लिया। भक–भक करती हुई गाड़ी प्लेटफार्म पर आ लगी। बड़ी भीड़ थी। चश्माधारी सज्जन को महिलाओं के साथ कुली लोग इंजन के उल्टी ओर बहुत दूर तक ले गए। कहीं स्थान न पा कर अंत में एक डिब्बे में जबर्दस्ती घुस गए। महेंद्र भी उन लोगों के साथ–साथ जा रहा था पर जिस डिब्बे में वे लोग घुसे, उस डिब्बे में स्थान का निपट अभाव देख कर वह विवश हो कर एक दूसरे डिब्बे में चला गया। वहाँ भी काफी भीड़ थी। किसी प्रकार उसने अपने बैठने के लिए थोड़ा–सा स्थान बनाया।

गार्ड ने सीटी दी। गाड़ी चल पड़ी। महेंद्र के मस्तिष्क में नाना अस्पष्ट भावनाएँ चक्कर काटने लगीं। दो दिन से उसे नींद नहीं आई थी। आज भी वह अभी तक सो नहीं पाया। इसलिए सोचते–सोचते वह ऊँघने लगा। ऊँघते हुए उसने देखा कि गुलाबी रंग की साड़ी द्रौपदी के चीर की तरह फैलती हुई अकारण सारे आकाश में छा गई है। सहसा दो स्थानों पर वह गगनव्यापी साड़ी फटी और उन दो छिद्रों से हो कर दो वेदनाशील, तीक्ष्ण, उज्ज्वल आँखें तीर की तरह प्रखर वेग से उसकी ओर धावित हो कर एक रूप में मिल कर एक बड़ी आँख के आकार में परिणत हो गईं। वह बड़ी आँखें उसके शरीर को छेद कर उसके हृत्पिंड को छू कर फिर ऊपर आकाश की ओर तीर की तरह छूटीं और आकाश में फैली हुई गुलाबी साड़ी में जा लगीं और फट कर फिर से दो सुंदर, किंतु करुणा–विकल आँखों के आकार में विभक्त हो गईं।

टूँडला स्टेशन पर गाड़ी ठहरने पर महेंद्र पूर्णतः सचेत हो कर बैठ गया। चश्माधारी महाशय दोनों महिलाओं को साथ ले कर कंपार्टमेंट से बाहर उतरे और सामान को कुलियों के हवाले करके उनके साथ बाहर फाटक की ओर चले। महेंद्र ने अपने कंपार्टमेंट से अपनी विश्वविजयिनी को देखा। वह इस उत्सुकता में था कि एक बार अंतिम समय के लिए दोनों की आँखें चार हो जावें, पर न हुईं और गुलाबी साड़ी से आवृत सजीव प्रतिमा व्यस्त विह्वल–सी आगे को निकल गई।

टूँडला से गाड़ी छूटने पर महेंद्र के कानों में चश्माधारी सज्जन के ठठा कर हँसने का शब्द गूँजने लगा। उसके अदृष्ट का चिर व्यंग्य पुकार मानो बार–बार कहता था – हा हा! आप भी बड़े मजे के आदमी हैं, खूब!

कविता

संजय वर्मा 'दृष्टि'

रात

चमकते जुगनू
लगते चिरागों से
कुछ फूल खिलकर
कर रहे बाते रातों से
केसे करे भँवरे मुहब्बत फूलों से
रौशनी ने कर ली है बातें
तितलियों से
रात में खिले फूलों से
उडी खुशबुएँ
और
चमकते हुए जुगनुओं को
देखो जरा ,टिमटिमाते हुए
हेरान हो जाओगे
कुदरत की दस्तकारी पर
तभी समझ पाओगे
रातें रंगीन क्यों हुआ करती है

–125,शहीद भगत सिंग मार्ग
मनावर जिला धार (म प्र)454446

अमर रागिनी कहाँ खो गयी

अखिलेश निगम 'अखिल'

अमर रागनी कहाँ खो गई?
आज प्रिये तुम कहाँ सो गई?

उर तरू के किसलय कानन में,
मन–मरू के मुर्छित आनन में,
विकल बुद्धि के मुक्तांग में,

नव वीणा के स्वर तंत्री से,
मृदु मधुलेप्न करने वाली,
अमर रागिनी कहाँ खो गई?
आज प्रिय तुम कहाँ सो गई?

प्रतिपल व्याकुल हर जन–जन को
अविरल अश्रु बहते कण को
शोकाकुल हर पल्लव तृण–को

मधुर पवन के चँवर डुलाकर,
आशा–दीप जलाने वाली,
अमर रागिनी कहाँ खो गई?
आज प्रिय तुम कहाँ सो गई?

तन–मन को हरषाने वाली,
तप्त ह्रदय सरसाने वाली,
मुधुमय गीत सुनाने वाली,

सरस कण्ठ की सजल सुधा से,
मरूधर प्यास बुझाने वाली,
अमर रागिनी कहाँ खो गई?
आज प्रिय तुम कहाँ सो गई?

गजल

किशन स्वरुप

दर्द–दाह में किसे पुकारें
किसके आगे हाथ पसारें

अंतर्मन में झाँक सकें तो
क्यों फिर अपने ऐब नकारें

कल थी, कल किसने देखा है
अच्छा हो, गर आज सुधारें

जिसके साथ दिया जीवन भर
कैसे उसका कर्ज उतारें

माँ थी एक साथ थे सारे
जाते ही पड़ गई दरारे

जल, थल, आग, हवा, सन्नाटा
सब दिन जीते, इक दिन हारे

कल और कल के बीच आज है
एक अदृशय लकीर, विचारें

खुर्शीद नवाब

मेरे शब्दों को,सुंदर सी, गजल का रूप देना है
किसी पतझड़ के पल्लव को, कमल का रूप देना है

मेरी रचनाओं से, आधार की पुष्टि नहीं होती
अभी, विश्वास को भी, आत्मबल का रूप देना है

मेरे साहित्य की भूमि, बड़ी ऊसर है, बंजर है
उगा कर पुष्प 'शब्दों के', फसल का रूप देना है

अति सीमित है, मेरी कल्पनाओं की परिभाषा
इसी, हिम खंड को, पिघला के जल का रूप देना है

सृजन की साधना कुंठित, अभिव्यक्त भी है व्यथित
हृदय की वेदनाओं को, असल का रूप देना–है

है तेरी लेखनी खुर्शीद, धरती सी न सागर सी
इसी दलदल को ऊष्मा दे के, थल का रूप देना है

अशोक 'अंजुम'

–1–

दर्द सीने का पिघलकर गिर पड़ा
आँख का मोती निकल कर गिर पड़ा

तेरे मेरे बीच का रिश्ता भी क्या
थोडा संभला और संभल कर गिर पड़ा

एक नन्हा हौसला कल धम्म से
कुछ कदम रस्ते पर चल कर गिर पड़ा

सच मेरा फौलाद के मानिन्द था
कल जरा रास्ता बदल कर गिर पड़ा

क्या कहूं इस खोखले विश्वास को
फिर नए सांचे में ढलकर गिर पड़ा

–2–

वो मिले यूँ कि फिर जुदा ही न हो
ऐसा माने कि फिर खफा ही न हो

मैं समझ जाऊँ सरे मजमूँ को
मेरे बारे में कुछ कहा ही न हो

मेरे इजहार पे वो कुछ यूँ था
जैसे उसने कि कुछ सुना ही न हो

कितनी हसरत थी उससे मिलने की
वो मिला यूँ कि जानता ही न हो

स्मरण

अपनी भाषा पर विचार

आचार्य
रामचंद्र शुक्ल

भाषा का प्रयोग मन में आई हुई भावनाओं को प्रदर्शित करने के लिए होता है। इससे यह समझना कि संसार की किसी भाषा द्वारा मनुष्य के हृदय के भीतर की सब भावनाएँ ज्यों की त्यों बाहरी सृष्टि में लाई जा सकती हैं सो ठीक नहीं। किन्तु किसी भाषा की श्रेष्ठता निश्चित करने के लिए यह विचार करना आवश्यक होता है कि वह अपने इस कार्य में कहाँ तक समर्थ है अर्थात् हृदयस्थित भावनाओं का कितना अंश वह प्रतिबिम्बित करके झलका सकती है। अभी तक मानव कल्पना में ऐसे ऐसे रहस्य छिपे पड़े हैं जिनको प्रकाशित करने के लिए कोई भाषा ही नहीं बनी है। स्मरण रखिए कि यह बात मैंने भावनाओं (Impression) के विषय में कही है, विचारों (General notions) के विषय में नहीं। भाषा की व्यंजक शक्ति दो वस्तुओं पर अवलम्बित है 'शब्द विस्तार' और 'शब्द योजना'।

शब्द विस्तार

जिस भाषा में शब्दों की कमी है उसका प्रभाव मनुष्य के कार्य कलाप पर बहुत थोड़ाहै। उस भाषा का बोलनेवाला बहुत सी बातों को जानता हुआ भी अनजान बना रहता है। यद्यपि शब्दों की बहुतायत से भाषा की पुष्टि होती है तथापि कई बातें ऐसी हैं जो उसकी सीमा स्थिर करती हैं। जिस जलवायु ने हमारे स्वभाव और रूपरंग को रचा उसी ने हमारे शब्दों को भी सृजा। ये शब्द हमारे जीवन के अंश समान हैंय इनमें से हर एक हमारी किसी न किसी मानसिक अवस्था का चित्र है। इनकी ध्वमनि में भी हमारे लिए एक आकर्षण विशेष है। निज भाषा के किसी शब्द से जिस मात्र का भाव उद्भूतहोता है उस मात्र का समान अर्थवाची किसी विदेशीय शब्द से नहीं। क्योंकि पहिले तो विजातीय शब्दों की ध्वंनि ही हमारी स्वाभाविक रुचि से मेल नहीं खाती, दूसरे वेविस्तार में हमारे मानसिक संस्कार के नाप के नहीं होते। आजकल हिन्दी की अवस्था कुछ विलक्षण हो रही है। उचित पथ के सिवाय उसके लिए तीन और मार्ग खोले गए हैं एक, जिसमें बिना किसी विचार के संस्कृत के शब्द और समास बिछाए जाते हैंय दूसरा, जिसको उर्दू कहना चाहिएय इनके अतिरिक्त एक 'तृतीय पथ' भी खुल रहा है जिसमें अप्रचलित अरबी, फारसी और संस्कृत शब्द एक पंक्ति में बैठाए जाते हैं। मैं यह नहीं चाहता कि अरबी और फारसी आदि विदेशीय भाषाओं के शब्द जो हमारी बोली में आ गए हैं, जिन्हें बिना बोले हम नहीं रह सकते, वे निकाल दिए जायँ। किन्तु क्लिष्ट और अप्रचलित विदेशीय शब्दों को व्यर्थ लाकर भाषा के सिर ऋण मढ़ना ठीक नहीं। सहायता के लिए किसी अन्य विदेशीय भाषा के शब्दों को लाना हानिकारक नहींय किन्तु उनकी संख्या इतनी न हो कि स्थानीय भाषा के आधीन रहकर काम करने के स्थान पर,वे उसी को अधिकारच्युत करने का यत्न करने लगें।

अब यहाँ पर प्रश्न हो सकताहै कि अरबी वा फारसी के कौन शब्द हिन्दी में लिए जायँ और कौन न लिए जायँ। मेरी समझ में तो हिन्दी में वे ही अरबी फारसी शब्द लिए जा सकते हैं जिनको वेलोग भी बोलते हैं जिन्होंने उर्दू कभी नहीं पढ़ी है, जैसे जरूर, मुकदमा, मजदूर। जो शब्द लोग मौलवी साहब से सीखकर बोलते हैं उनका दूर होना ही हिन्दी के लिए अच्छा है। राजा शिवप्रसाद मुसलमानी हिन्दी का स्वप्न ही देखते रहे कि भारतेन्दु ने स्वच्छ आर्य हिन्दी की शुभ्र छटा दिखाकर लोगों को चमत्कृत कर दिया। लोग चकपका उठे, यह बात उन्हें प्रत्यक्ष देख पड़ी कि यदि हमारे प्राचीन धर्म, गौरव और विचारों की रक्षा होगी तो इसी भाषा के द्वारा। स्वार्थी लोग समय समय पर चक्र चलाते ही रहे किन्तु भारतेन्दु की स्वच्छ चंद्रिका में जो एक बेर अपने गौरव की झलक लोगों ने देख पाई वह उनके चित्त से न हटी। कहने की आवश्यकता नहीं कि भाषा ही जाति के धार्मिक और जातीय विचारों की रक्षिणी हैय वही उसके पूर्व गौरव का स्मरण कराती हुई, हीन से हीन दशा में भी, उसमें आत्माभिमान का स्रोत बहाती है। किसी जाति को अशक्त करने का सबसे सहज उपाय उसकी भाषा को नष्ट करना है। हमारी नस नस से स्वदेश और स्वजाति का अभिमान कैसे निकल गयाय हमारे हृदय से आर्य भावनाओं का कैसे लोप हो गया? क्या यह भी बतलाना पड़ेगा? इधर सैकड़ों वर्ष से हम अपने पूर्व संचित संस्कारों को जलांजलि दे रहे थे। भारतवर्ष की भुवनमोहिनी छटा से मुँह मोड़कर शीराज और इस्फहान की ओर लौ लगाए थे; गंगा जमुना के शीतल शान्तिदायक तट को छोड़कर इफरात और दजला के रेतीले मैदानों के लिए लालायित हो रहे थेय हाथ में अलिफलैला की किताब पड़ी रहती थी, एक झपकी ले लेते थे तो अलीबाबा के अस्तबल में जा पहुँचते थे। हातिम की सखावत के सामने कर्ण का दान और युधिष्ठिर का सत्यवाद भूल गया थाय शीरीं फरहाद के इश्क ने नलदमयन्ती के सात्विक और स्वाभाविक प्रेम की चर्चा बन्द कर दी थी। मालती, मल्लिका केतकी आदि फूलों का नाम लेते या तो हमारी जीभ लटपटाती थी या हमको शर्म मालूम होती थी। वसन्त ऋतु का आगमन भारत में होता था, आमों की मंजरी से चारों दिशाएँ आच्छादित होती थीं पर हमको कुछ खबर नहीं रहती थी, हम उन दिनों गुले लाला और गुले नरगिस के फिम्राकष् में रहते थेय मधुकर गूँजते और कोइलें कूकती थीं, पर हम तनिक भी न चौंकते थे, अड्डे पर कान लगाए हम बुलबुल का नाला सुनते थे। यहाँ पर एक बात हम स्पष्ट रूप से कह देना चाहते हैं। हम हिन्दू हैं, हिन्दुस्तान हमारा देश है, हिन्दी हमारी भाषा है। इस भाषा में अवश्यमेव हिन्दुओं के आचार विचार का आभास रहेगा, इसमें अवश्य उनके प्राचीन गौरव की गंध रहेगी कुढ़ने वाले भले ही कुढ़ें। वह सहायता के लिए भरसक संस्कृत ही का मुँह देखेगी। मुट्ठी भर मुसलमानों के लिए हम कदापि अपनी भाषा को लांछित न करेंगे। यदि मुसलमान लोग उसे नहीं समझना चाहते तो न समझें, हमारी कोई हानि नहीं। मुसलमान लोगतो तनिक भी शीन कषफ के बाहर न हों और हम भौंदू बने उनके पास खसकते जायँ ऐसी कौन सी आफत आई है। यह भी कोई राजनीतिक युक्ति नहीं है कि एक तरफ तो मुसलमान लोग ऐंठे जा रहे हैं, दूसरी तरफ हमारे माननीय लोग अपनी भधुर वक्तृताओं में उन्हें लपेटते जा रहे हैं। यदि कहिए की इस प्रान्त के अधिकांश शिक्षित लोगों की एक भाषा बन गई है उसी को चटपट ग्रहण कर लेने से समय की बचत होगी तो भी ठीक नहीं, क्योंकि वह भाषा एक अस्वाभाविक शिक्षा से बनी है और उसी शिक्षा ही के साथ हवा हो सकती है। यदि आज से हमारे बच्चों के हाथ में खालकबारी के स्थान पर अमरकोशदे दिया जाय और एंगरेजी के साथ उन्हें संस्कृत या हिन्दी का अभ्यास कराया जाय तो यही हिन्दी बीस वर्ष के भीतर ही गली गली सुनाई देने लगे। क्या बंगला देश में मुसलमान नहीं हैं? क्या संस्कृत मिश्रित बंगला भाषा के लिए वहाँ राह नहीं निकल गई? क्या छोटे छोटे बंगालियों के बालक उन संस्कृत शब्दों को माधुरता से उच्चारण करते नहीं पाए जाते जिनको सुनकर हमारे मुंशी लोग इतना चौंकते हैं? जबकि देश में राष्ट्रीयता की इतनी चर्चा फैल रही है, जब नागरी को राष्ट्रलिपि और हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का उद्योग बंगाल और महाराष्ट्र प्रदेशों में भी हो रहा है, उस समय हिन्दी को इन प्रदेशों की भाषाओं से दूर हटना ठीक नहीं वरन् उसको अपने उस अंश की कुछ वृद्धि करनी चाहिए जो उन सब भाषाओं में सम्मिलित (Common) है। यह सम्मिलित अंश संस्कृत शब्दों का समूह है।

जब एक बार राजा शिवप्रसाद की मुसलमानी हिन्दी को दबाकर भारतेन्दु की हिन्दी अग्रसर हुई और आज तक बराबर निर्विवाद रूप से स्वीकृत होती आई तब इस फारसीदार हिन्दी की चर्चा फिर कैसे आरम्भ हो गई इसका विचार करना है। इसका दूसरा उत्थान फिर काशी के तिलस्मी उपन्यासों में देख पड़ा जिनकी रचना उर्दूदाँ 'क ख' पहिचानने वालों को भी फँसाने में समर्थ हुई। एक को लाभ उठाते देख दूसरे ने भी उसी मार्ग पर पैर रक्खा वही ऐय्यारी, वही तिलस्म, वही भाषा, वही सब कुछ। कई लोग साहसपूर्वक आगे बढे और उर्दू नावेलों को सामने रख और उन्हें नागरी अक्षरों में उतारकर नाम और दाम कमाने लगे। किन्तु तब तक यह हवा और श्रेणी के लेखकों को नहीं लगी थी। सहसा प्रयाग की सरस्वती के मालिकों

का ध्या न सरलता की ओर जा पड़ाय ग्राहक बढ़ाने के हेतु प्रत्रिका को सरल और कौतूहल प्रदायिनी बनाने की चेष्टा होने लगी। इस सरलताका जाज्वल्यमान उदाहरण पहिले पहल 1904 ई. में श्नास्तिक आस्तिक संवादश प्रकाशित हुआ। इसमें मजाज, तकप्रीर, दकीका, महदूद, ऐब–जोई, हकीर और कोताह बुद्धिक्व आदि शब्दों द्वारा भाषा एकबारगी सरल कर दी गई। उसी में ये वाक्य देख पड़ेश्शजिस समय ईश्वर, जिसकी हस्ती की बाबत आपको शंका है, आपकी ज्ञान लब दुर्विदग्धाता को खो देगा... कहिए यह भाषा को सरल करना है या उसको और भी कठिन बनाना है। ऐसी भाषा लिखने के पहिले 'करीमुल्लुगात' का एक नागरी संस्करण छापना चाहिए। जो लोग केवल हिन्दी वा संस्कृत ही जानते हैं वे इस 'हस्ती' को 'हाथी' समझें या और कुछ। यह पत्रिका सरलता के इतना पीछे पड़ी है कि कभी कभी साधारण प्रचलित शब्द भी बिना अरबी टीका के नहीं जाने पाते, देखिए–

''यदि वह बात वा राय सर्वथा सच नहीं है, केवल उसका कुछ ही अंश सच है तो भी यदि वह प्रगट न की जायगी जाहिर न की जायेगी।''

''तथापि वे कृतकार्य नहीं हुए उनको कामयाबी नहीं हुई।''

''यह बात विधि विरुद्ध है जाब्ते के खिलाफ है।''

जो मनुष्य 'सर्वथा' और 'अंश' को समझ सकता था क्या वह 'प्रगट' को न समझता जो फिर से 'जाहिर' लिखने की जरूरत हुई? इस प्रकार की भाषा लिखना मानो उर्दू वालों को यह कहने का अवसर देना है कि उर्दू इतनी आमफहम है कि बिना उसकी सहायता के हिन्दी किसी को एक बात भी नहीं समझा सकती। मेरी जान में तो फौकियत, जुहला, मजामीन, मुहक्किकीन, तमस्खुर आदि शब्द साधारण हिन्दी जाननेवाले लोग नहीं समझ सकते। गवर्नमेंट तथा शिक्षा विभाग की अभिरुचि का कुछ अंश भी इस प्रवृत्ति का परिचालक है। सरकार कोई निज की स्वतन्त्र सम्मति तो रखती नहींय जो हाकिमों और नवाबों ने सुझाया वही उसका अटल सिद्धान्त हो गया, उसी पर वह जम गई। यदि कोई और प्रान्त होता तो सरकार को अपनी इस कुरुचि का फल चखाने में क्व आश्चर्य की बात है कि एक महीने पहिले द्विवेदीजी ने नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'भौगोलिक परिभाषा' के 'थाह मापक' सूत्र की आलोचना इस प्रकार की थी– 'थाह' प्राकृत और 'मापक' संस्कृत! इस तरह का समास, हमने सुना था, नहीं होता। हम नहीं समझते कि फिर 'कोताह' फारसी और 'बुद्धि' संस्कृत का समास कैसे हो गया। कुछ देर लगती पर यह सर सैयद अहमद और राजा शिवप्रसाद की जन्मभूमि कब उसको मीठा कहकर बाँटनेवाले लोगों से खाली रह सकती है। ऐसे अप्रचलित फारसी शब्दों के बिना हमारा कोई काम नहीं अटकताय क्योंकि उनके स्थान पर रखने के लिए हमें न जाने कितने संस्कृत क्या हिन्दी ही शब्द मिल सकते हैं। हाँ, जिन विचारों के लिए हिन्दी वा संस्कृत शब्द न मिलें उनको प्रगट करने के लिए हम विजातीय शब्द लाकर अपनी भाषा की वृद्धि मान सकते हैं। एक ही वस्तु के लिए अनेक शब्दों के होने से भाषा की क्रिया में कुछ उन्नति नहीं होती। जैसे सूर्य के लिए रवि, र्मात्ताण्ड, प्रभाकर, दिवाकर और चन्द्रमा के लिए शशि, इन्दु, विधा, मयंक आदि बहुत से शब्दों के होने से भाषा की व्यंजक शक्ति में कुछ भी वृद्धि नहीं होती, केवल ध्वानि की भिन्नता वा नवीनता से हमारा मनोरंजन होता है और भाषा में एक प्रकार का चमत्कार आ जाता है जो कविता के लिए आवश्यक है। इन अनेक नामों में से साधारण गद्य में उसी शब्द को स्थान देना चाहिए जो सबसे अधिक प्रचलित है, जैसेसूर्य, चन्द्रमा। 'रवि उदय होता है', 'भास्कर अस्त होता है', 'विधु का प्रकाश फैलाता है', ऐसे ऐसे वाक्य कानों को खटकते हैं और कृत्रिम जान पड़ते हैं। हाँ, जहाँ 'प्रचण्ड मार्तण्ड की उद्दण्डता', दिखाना हो वहाँ की बात दूसरी है पर मैं तो वहाँ भी ऐसे शब्दों की उतनी अधिक आवश्यकता नहीं समझता। शब्दालंकार केवल कविता के लिए प्रयोजनीय कहा जा सकता है। गद्य में उसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है, गद्य में तो उसके और और गुणों के अन्वेषण ही से छुट्टी नहीं मिलती। गद्य की श्रेष्ठता तो भावों की गुरुता और उनके प्रदर्शन प्रणाली की स्पष्टता वा स्वच्छता ही पर अवलम्बित हैय और यह स्पष्टता और स्वच्छता अधिकतर व्याकरण की पाबन्दी और तर्कना की उपयुक्तता से सम्बन्ध रखती है। सारांश यह कि आधुनिक शैली के अनुसार गद्य में शब्द और अर्थ ही का विचार होता है, ध्वानि[1] का नहीं।

<u>शब्द योजना</u>

यहाँ तक तो शब्द विस्तार की बात हुई। आगे भाषा के इससे भी गुरुतर और प्रयोजनीय अंश अर्थात् शब्द योजना पर ध्या न देना है। भाषा उत्पन्न करने के लिए असंख्य शब्दों का होना ही बस नहीं है। क्योंकि पृथक् पृथक् वे कुछ भी नहीं कर सकते। वे कल्पना में इन्द्रिय कम्प द्वारा खचित एक एक स्वरूप के लिए भिन्न भिन्न संकेत मात्र हैं। कोई ऐसा पूरा विचार (Complete notion) उत्पन्न करने के लिए जो मनुष्य की प्रकृति पर कोई प्रभाव डाले अर्थात् उसकी भौतिक वा मानसिक स्थिति में कुछ फेरफार

उत्पन्न करे, हमें शब्दों को एक साथ संयोजित करना पड़ता है। जैसे कोई मनुष्य सड़क पर चला जाता है, यदि हम पीछे से उसको सुनाकर कहें कि 'मकान', तो वह मनुष्य कुछ भी ध्यान न देगा और चला जायगा, किन्तु यदि पुकारें कि 'मकान गिरता है' तो वह अवश्य चौंक पड़ेगा और भागने का उद्योग करेगा। शब्द योजना का प्रभाव देखिए! प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि वह इस कार्य में बड़ी सावधानी रक्खे। बहुत से शब्दों को जोड़ने ही से भाषा उत्पन्न नहीं होगी, उसमें उपयुक्त क्रम, चुनाव और परिमाण का विचार रखना होता है। निश्चय जानिए कि शब्दों के मेल में बड़ी शक्ति है। एक भावुक मनुष्य थोड़े से शब्दों को लेकर भी वह वह चमत्कार दिखला सकता है जो एक स्तब्ध चित्त का मनुष्य चार भाषाओं का कोश लेकर भी नहीं सूझा सकता। कुछ दिन पहिले हमारी हिन्दी की स्थिति ऐसी हो गई थी कि उसका विचार क्षेत्र में अग्रसर होना कठिन देख पड़ता था। बने बनाए समास, जिनका व्यवहार हजारों वर्ष पहिले हो चुका था, लाकर भाषा अलंकृत की जाती थी। किसी परिचित वस्तु के लिए जो जो विशेषण बहुत काल से स्थिर थे, उनके अतिरिक्त कोई अपनी ओर से लाना मानो भारतभूमि के बाहर पैर बढ़ाना था। यहाँ तक कि उपमाएँ भी स्थिर थीं मुख के लिए चन्द्रमा, हाथ पैर के लिए कमल, प्रताप के लिए सूर्य, कहाँ तक गिनावैं। जहाँ इनसे आगे कोई बढ़ा कि वह साहित्य में अनभिज्ञ ठहराया गया अर्थात् इन सब नियत उपमाओं का जानना भी आवश्यक समझा जाता था। पाठक! यह भाषा की स्तब्धता है, विचारों की शिथिलता है और जाति की मानसिक अवनति का चिह्न है। अब भी यदि हमारे कोरे संस्कृतज्ञ पंडितों से कोई बात छेड़ी जाती है तो वे चट कोई न कोई श्लोक उपस्थित कर देते हैं और उसी के शब्दों के भीतर चक्कर खाया करते हैं, हजार सिर पटकिए वे उसके आगे एक पग भी नहीं बढ़ते। यदि कोई जाल वा धोखे से किसी की सम्पत्ति हर ले तो पंडितजी कदाचित् उसके सम्मुख उसके कार्य की आलोचना इसी चरण से करेंगे। उनकी विचार शक्ति इन श्लोकों से चारों ओर जकड़ी हुई है, उसको अपना हाथ पैर हिलाने की स्वच्छन्दता कभी नहीं मिलती। ऐसी दशा में उन्नति के मार्ग में एक पग भी आगे बढ़ना कठिन होता है।

इसी प्रकार अनुप्रास से टँकी हुई शब्दों की लम्बी लम्बी लरी इस बात को सूचित करती है कि लेखक का ध्या न विचारों की अपेक्षा शब्दों की ध्वानि की ओर अधिक है। आरम्भ ही में कहा गया कि भाषा का प्रधान उद्देश्य लोगों को भावों व विचारों तक पहुँचाना है न कि नाद से रिझाना जो कि संगीत का धर्म है। शब्दमैत्री वा यमक दिखलाने के उद्देश्य से ही लेखनी उठाना ठीक नहींय यदि आपकी कल्पना में सद्गुण की कोई मनोहारिणी छाया देख पड़ी हो तो आप उसे खींचकर संसार के सन्मुख उपस्थित कीजिए, यदि आपके हृदय में विचारों के रगड़ से कोई ऐसी ज्योति उत्पन्न हुई हो जिसके प्रकाश में जीव अपना भला बुरा देख सकते हों, तो आप उसे बाहर लाइएय अन्यथा व्यर्थ कष्ट न उठाइए। हम देखते हैं कि इसी रुचि वैलक्षण्य के कारण हमारे हिन्दी काव्य का अधिक भाग हमारे काम का न रहा। वहाँ विचित्र ही लीला देखने में आती है। घनाक्षरी, कवित्ता और सवैया के श्कविन्दोंश ने कुछ शब्दों का अंग भंग कर दो? एक ('सु' ऐसे) अक्षरों की अगाड़ी पिछाड़ी लगाकर बलात् और निष्प्रयोजन उन्हें एक में नाथ रखा है। वर्णन शक्ति की शिथिलता के कारण रसों (Sentiments) के उद्रेक के लिए अत्यन्त अधिकता से ध्वकनि का सहारा लिया गया है। ऋंगार रस की कविता में 'सरस' 'मंजु' 'मंजुल' आदि शब्दों के हेतु कुछ स्थान खाली करना पड़ा है– ''मंजुल म्लद गुंजै मंजरीनमंजु मंजु मुदित मुरैली अलबेली डोलैं पात पात।'' कविजी ने न जाने किस लोक में मुरैलियों को पत्तों पर दौड़ते देखा है। इसी प्रकार जहाँ वीररस की चर्चा है वहाँ द्वित्व और वर्ग का विस्तार है, जैसे– ''ड़रि डरि ढरि गये अडर डराय ढह ढरढर ढर के धाराधार के धारके''। किन्तु इस 'खडड बडड' के बिना भी वीर रस का संचार किया जा सकता है, इस बात के उदाहरण शेखर कवि का 'हम्मीर हठ', भारतेन्दु की 'विजयिनी विजय वैजयन्ती' और 'नीलदेवी' विद्यमान हैं। आज सैकड़ा पीछे कितने आदमी मतिराम, भूषण और श्रीपति सुजान के कविताओं को अनुराग से पढ़ते तथा उनके द्वारा किसी आवेग में होते हैं? पर वहीं सूर, तुलसी, केशव, रहीम और बिहारी आदि की कविता हमारे जातीय जीवन के साथ हो गई है। उनकी एक एक बात हमारे किसी काम में अग्रसर होने वा न होने का कारण होती है। इस भेदभाव का कारण क्या है? वही एक में शब्दों का व्यर्थ आडम्बर और दूसरी में भावों की स्वच्छता तथा वर्णन की उपयुक्तता। वे 'चटकीले मटकीले' शब्द लाख करने पर भी हमारे हृदय पर अधिकार न जमा सकेय निकलकर हवा में मिल जाना ही उनके कार्य का शेष होता है। क्योंकि सृष्टि के नियमानुसार स्वर्गीय पदार्थ ही एक दूसरे में लीन होने को झुकते हैंय जल ही जल की ओर जाता है, इसी प्रकार चित्त की उपज ही चित्त में धंसती है।

प्रत्येक साहित्य के अर्थालंकार में, प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष, उपमा का प्रयोग बहुत अधिक होता है क्योंकि भौतिक पदार्थों के व्यापार, विस्तार, रूप रंग तथा मानसिक अवस्थाओं की स्थिति, क्रम, विभेद आदि का सम्यक् ज्ञान उत्पन्न करने के लिए बिना उसके काम नहीं चल सकता। इसका

प्रयोग जान व अनजान में हम हर घड़ी किया करते हैंय छोटे छोटे विचारों को व्यक्त करने में भी हम बिना उसका सहारा लिए नहीं रह सकते हैं, यहाँ तक कि हमारे सब अगोचर पदार्थवाची शब्द आरम्भ में इसी (उपमा) की क्रिया से बने हैंय यह भाषा की बनावट के इतिहास से प्रमाणित है। जब शब्दों का यह हाल है तब फिर इस प्रकार की अपार्थिव भावनाओं का क्या कहना है। उनका अनुभव तो हम पार्थिव पदार्थों ही के गुण और व्यापार के अनुसार करते हैं। अर्थात् भौतिक वस्तुओं के गुण और धर्म को अपार्थिव वस्तुओं में स्थापित करके ही हम आध्यातत्मिक विषयों की मीमांसा करते हैं। साधारण दृष्टान्त लीजिएश्शदया ने प्रतीकार की इच्छा को दबा दिया।श्श श्शउसके प्रेम से परिपूर्ण हृदय में प्रिय के दुर्गुणों के विचार की जगह न रही।श्श पहिले में भौतिक पदार्थों के गुरुत्व और अपने से हलके पदार्थों को दबाकर उभड़ने से रोकने की क्रिया का आभास हैय इसी प्रकार दूसरे में पदार्थों के स्थान छेंकने का धर्म स्थापित किया गया है। बात यह है कि इन नियमों से पार्थिव और आध्याात्मिक दोनों सृष्टियाँ समान रूप से बद्धा हैं।

उपमा का कार्य सादृश्य दिखलाकर भावना को तीव्र करना है। जिस वस्तु के लिए हम कोई शब्द नहीं जानते उसका बोध उपमा ही द्वारा कराते हैं, जैसे जो मनुष्य हारमोनियम का नाम नहीं जानता वह उसकी चर्चा करते समय यही कहेगा कि वह संदूक के समान एक बाजा है। यदि किसी वस्तु का विस्तार इतना बड़ा है कि हम उसे निर्दिष्ट शब्दों में नहीं बतला सकते तो हम चट उतने ही वा उससे बहुत अधिक विस्तृत अन्य पदार्थ की ओर इंगित करते हैं, जैसे ''हरियाली चारों ओर समुद्र के समान लहराती देख पड़ी।'' ''ज्वालामुखी से भाप और राख उठकर बादल के समान आकाश में छा गई।'' हम यह न देखने जायँगे कि समुद्र का विस्तार हरियाली के फैलाव से नाप में न जाने कितना वर्गमील बड़ा हैय इसकी हमें कोई आवश्यकता नहीं, यह बात निरीक्षण के समय हमारी दृष्टि की पहुँच के बाहर की है। अतएव जब तक हम विवेचना शक्ति का सहारा न लें, वह हमारी प्राप्त भावनाओं में अन्तर नहीं डाल सकती। निरीक्षण के समय हमारी दृष्टि की पहुँच के भीतर इन दोनों (हरियाली और समुद्र) का अन्त नहीं होता यही इनमें समानता है। यदि किसी महाविशाल पिंड के आकार का परिज्ञान कराना रहता है तो उसकी तुलना हम समान आकार वाले किसी छोटे पदार्थ से करते हैंय तदनन्तर उस छोटे पिंड में उस आकार के गुण धर्म को दिखलाकर हम उनकी स्थापना बड़े पिंड में करते हैं, जैसे स्कूलों में लड़कों से कहा जाता है कि ''लड़को! पृथ्वी नारंगी के समान गोल है'', क्योंकि ऐसी उपमा से हमारा कुछ काम नहीं निकलता। पदार्थों के व्यापार, गुण और स्थिति को स्पष्ट करके उनका तीव्र अनुभव कराना उपमा का काम है, और कुछ नहीं। अतएव एक ही वस्तु के लिए पचीसों उपमाओं का तार बाँध देना, उपमा कथन के हेतु ही किसी वस्तु को वर्णन करने बैठ जाना और उससे किसी अंश में समानता रखनेवाले पदार्थों की सूची तैयार करना उचित नहीं है। जैसे प्रभातकालीन सूर्यमंडल को देख यही बकने लगना कि ''यह थाली के समान है'' अथवा ''शोणित सागर में बहता हुआ स्वर्ण कलश है'' वा ''स्वर्गलोक की झलक दिखलाने वाली गोल खिड़की है'' किंवा श्श्होली की महफिल में रखे हुए लैम्प का ग्लोब हैश्श यह वाणी का सदुपयोग नहीं कहा जा सकता। मेरा अभिप्राय यह है कि उपमा का प्रयोग आवश्यकतानुसार ही होता हैय उसका अनावश्यक और अपरिमित प्रयोग प्रलाप है। अकेले वा पृथक् रूप में वह इस योग्य नहीं कि उसे भरने के लिए हम एक प्रबन्ध वा पुस्तक लिख डालें। यही बात सब अलंकारों के लिए कही जा सकती है। किसी वस्तु को उसकी सीमा के बाहर घसीटना उसको उसके गुण से च्युत करना है। यह बात हमारी हिन्दी कविता में प्रत्यक्ष देखने में आती है। किसी नीतिज्ञ ने अन्योक्तियों ही का कल्पवृक्ष लगाया हैय किसी नायिका भेद के भक्त ने अकेली नवोढ़ा ही का आदर्श दिखलाया है, किसी नखसिख निहारने वाले ने 'अलक' और श्तिलश्र ही पर शतक बाँध है। आप ही कहिए कि इतने संकुचित स्थान में भीतरी और बाहरी सृष्टि के कितने अंश का व्यापार दिखलाया जा सकता है और पाठक का ध्यान बिना ऊबे हुए कब तक उसमें बद्धा रह सकता है।

धर्म वा व्यापार के पूर्णतया प्रत्यक्ष न होने के कारण जब किसी वस्तु की भावना धुधँली व मंद होती है तब उसको तीक्ष्ण और चटक करने के लिए समान धर्म और गुणवाले अन्य अधिक परिचित पदार्थों को हम आगे रखते हैं। किन्तु काव्य की उपमा में एक और बात का विचार भी रखना होता है। वह यह है कि सादृश्य दिखलाने के लिए जो पदार्थ उपस्थित किए जायँ वे प्राकृतिक और मनोहर हों, कृत्रिम और क्षुद्र नहीं, जिसमें ज्ञानदान के अर्थ जो रूप उपस्थित किए जायँ वे रुचिकर होने के कारण कल्पना में कुछ देर टिकें और हमारे मनोवेगों (sentiment) को उभाड़ें जो हमें चंचल करके कार्य में प्रवृत्त करते हैं। उपमान और उपमेय में जितनी ही अधिक बातों में समानता होगी उतनी ही उपमा उत्कृष्ट कही जायगी।

(साभार : आनन्द कादम्बिनी, ज्येष्ठ से अग्रहायण सं. 1964 वि. 1907 ई.)

शोध-लेख

बृजेन्द्र कुमार

आदिवासी-विमर्श और हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता

आज का आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है। यह ऐसा विमर्श है जिससे इस समुदाय की परंपरा, रूढ़ियां, संस्कृति, अन्याय, अत्याचार, अपमान, शोषण सभी कुछ बयान हो रहा है। लोककला, संगीत, नृत्य, संस्कृति, भाषा, बोली, लिपि आदि विभिन्न धरातलों पर आदिवासी लेखन एक व्यापक विमर्श का हिस्सा बन रहा है। चूंकि इसकी लिपि और भाषा को लम्बे अरसे तक पहचान ही नहीं मिल सकी इसलिए उनका संरक्षण और विकास भी बाधित हुआ। साहित्य और कला, साहित्य और जीवन के बीच जो दीवारें समाज में खड़ी हैं, उन दीवारों का आदिवासी समाज में कुछ भी स्थान नहीं है। इन व्याख्याओं का बदलना जरूरी है, क्योंकि आज आदिवासी समाज में कई प्रथाएं, लोकगीत और नाटक तथा अनेक अन्य कलाएं विद्यमान हैं जिन्हें शब्दबद्ध नहीं किया गया है। हजारों वर्षों से चली आ रही परंपराएं रूढ़ियों के रूप में आज भी आदिवासी जीवन का अभिन्न अंग हैं।

भारतीय समाज के सर्वांगीण विकास में हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता है। हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता ने सामाजिक हितों से सम्बंधित विविध विमर्शों में अभूतपूर्व योगदान दिया है। स्त्री–विमर्श हो या दलित विमर्श, सामाजिक–विमर्श हो या राजनैतिक–विमर्श; हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता ने अपनी बुलंद आवाज से प्रत्येक विमर्श को संबल प्रदान किया है। हिंदी पत्रकारिता ने भारतीय समाज में स्थित स्त्रियों, दलितों और किसानों की समस्याओं के साथ–साथ आदिवासियों की समस्याओं पर भी गंभीरता से विचार किया है। पत्रकार प्रेमचंद जी ने मार्च 1930 के 'हंस' में 'उपन्यास का विषय' शीर्षक आलेख में विस्तार से उपन्यास के विषयों के संदर्भ में विवेचन किया है। प्रेमचंद जानते थे कि हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता जब तक स्वाभाविक परिस्थितियों के अनुकूल अपना विचार नहीं रखती, तब तक वह अपना विकास नहीं कर पायेगी। हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता ने 'कल्पना कम, सत्य अधिक' को मंत्र मानकर अपने कर्तव्यों का निर्वहन आरंभ से किया है। इसी कारण आदिवासियों के जीवन का यथार्थ रूप पाठकों के सामने रखने में हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता सफल हुई परिलक्षित होती है। पत्रकार प्रेमचंद कहते हैं– ''शिक्षित–समाज की भाषा तो सर्वत्र एक है, हाँ भिन्न–भिन्न जातियों की जबान पर उसका रूप कुछ न कुछ बदल जाता है। बंगाली, मारवाडी, ऐंग्लो इंडियन भी कभी–कभी बहुत शुद्ध हिंदी बोलते पाए जाते हैं, लेकिन यह अपवाद है– नियम नहीं, पर ग्रामीण बात–चीत कभी–कभी हमें दुविधा में डाल देती है। बिहार की ग्रामीण भाषा शायद दिल्ली के आस–पास का आदमी समझ ही न सकेगा। वास्तव में कोई रचना रचयिता के मनोभावों का, उनके चरित्र का, उसके जीवनादर्श का, उसके दर्शन का आईना होती है। अगर लेखक आशावादी है, तो उसकी रचना में आशावादिता छलकती रहेगी, अगर वह शोकवादी है, तो बहुत प्रयत्न करने पर भी वह अपने चरित्रों को जिन्दा दिल न बना सकेंगा।''[1]

हिंदी साहित्य का अद्यतन विमर्श आदिवासी विमर्श है। हिंदी में आदिवासियों पर लंबे समय से लिखा जा रहा है, मगर जबसे आदिवासी क्षेत्रों में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की घुसपैठ और उनके खिलाफ संघर्ष बढ़ा है, इनकी समस्याओं पर जोर–शोर से लिखा जाने लगा है। वैसे ही जैसे दलितों की समस्याएं तो सदियों

से रही हैं, इन पर मुल्कराज आनंद, हीराडोम जैसे साहित्यकार लिखते भी रहे हैं, मगर जब डॉ. भीमराव अम्बेडकर से प्रेरित होकर कई दलित आंदोलन चले, तो दलितों पर लेखन बढ़ा और उसने हिंदी में दलित साहित्य विमर्श को जन्म दिया। तमाम कमजोरियों और भटकावों के बावजूद इसने हिंदी साहित्य को अधिक समृद्ध और सार्थक बनाया है। दलित समाज से भिन्न अपने सामाजिक–सांस्कृतिक–भाषिक मूल्यों और भिन्न विद्रोही इतिहास के बावजूद राजनीतिक–साहित्यिक हाशियेपन के चलते आदिवासियों ने उम्मीद की थी कि यह दलित विमर्श अंकुरित हो रहे आदिवासी विमर्श का पथ–प्रदर्शक बनेगा।

आदिवासी विमर्शकार जानते हैं कि आदिवासी विमर्श दलित विमर्श से उतना ही भिन्न होने वाला है, जितना आदिवासी समाज इस समाज से है। यानी काफी हद तक सवर्णों से छुआछूत न बरतने वाले अपने दुराग्रहों के चलते ही सही, इन पर न लिख सकने वाले हिंदी लेखकों से एक सीमा से अधिक न जाकर सवाल करने वाला सृजनात्मक विमर्श। अन्य वैचारिक आंदोलनों के भटकावों से नहीं सीखकर दलित विमर्श भी काफी भटका है। अपनी सीमा में दलित सवालों पर बल देने वाली प्रेमचंद की रचना 'रंगभूमि' को जलाया जाना जरूरी समझा गया, बिना यह समझे कि 'मनुस्मृति' और 'रंगभूमि' में कितना फर्क है। अपनी समझ से दलित पक्ष को मजबूती से रखने वाले प्रेमचंद के योगदान को सराहे जाने के बजाय उन्हें 'सामंत का मुंशी' कहा गया। मगर इन घटनाओं से प्रेमचंद के कद पर कोई असर नहीं पड़ा, उल्टे दलित श्रम बेकार गया। कहना आवश्यक नहीं कि साहित्यिकार–पत्रकार प्रेमचंद हिंदी पत्रकारिता से मनुष्यों को भीतर से जानने की आशा करते हैं। सिद्धनाथ माधव की कहानी 'परख' भारतीय चित्र–कला की उन्नति, लोक–शिक्षण आदि स्तंभों को 'हंस' में स्थान देकर पत्रकार प्रेमचंद ने आदिवासी विमर्श की बात 1930 ई. में छेड़ी थी। स्वतंत्रता के पूर्व ही प्रेमचंद ने भारतीय सामाजिक विकास के लिए वर्ग–चेतना के विभिन्न विकासात्मक पहलुओं का विवेचन अपने संपादकीय 'हंस–वाणी' में किया है। प्रेमचंद की परंपरा को ही 'हंस' के राजेंद्र यादव ने आगे बढ़ाया। 'हंस' के अगस्त 1986 ई. के अंक में संपादक राजेंद्र यादव ने सच ही कहा है– ''हम इस 'हंस' को प्रेमचंद की परम्परा से ही जोड़ना चाहते हैं, सामाजिक समानता, अन्याय और शोषण के विरुद्ध संघर्ष, रूढ़ियों और आडम्बरों के खिलाफ जिहाद.. प्रेमचंद हमारे लिए मूर्ति या आदर्श से अधिक एक प्रेरणा और अंकुश है..।''[2]

आदिवासी–विमर्श की दृष्टि से देखने पर राजेंद्र यादव ने प्रेमचंद के विचारों को ही समाजाभिमुख करने प्रयास 'हंस' पत्रिका द्वारा किया है। हंस के माध्यम से राजेन्द्र यादव ने कथाकार संजीव, दक्षिण अफ्रीकी कहानीकार रिचर्ड राइव, फखर जमान की पाकिस्तानी पंजाबी उपन्यासिका 'एक मरे बंदे की कहानी' आदि भविष्य में आदिवासी विमर्श को सशक्त करने वाले लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित कर राजेंद्र यादव ने 'आदिवासी विमर्श' को नया आयाम दिया। 'आदिवासी समाज और शिक्षा' शीर्षक रामशरण जोशी की किताब की सराहना कर 'हंस' ने आदिवासी विमर्श पर लंबी बहस छेडी। लेखिका रमणिका गुप्ता का पहला लघु उपन्यास 'सीता' पर 'हंस' ने बहस की। आदिवासी महिलाओं का प्रतिनिधिक रूप ही 'सीता' लघु उपन्यास है।

हिंदी पत्रकारिता ने समय–समय पर आदिवासी समाज का शोषण–दोहन और संघर्षों का वस्तुनिष्ठ और प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत किया है, इसे नकार पाना आसान नहीं है। अनेक पत्रकारों ने दलित समाज के साथ–साथ आदिवासी समाज का अध्ययन कर अपने विचारों के साथ आदिवासी–जीवन पाठकों के सामने प्रस्तुत किया। मोहनदास नैमिशराय, नाग बोडस, रमणिका गुप्ता, अखिलेश्वर झा, शैलेंद्र सागर, कमलेश्वर, प्रभाष जोशी आदि लेखकों ने 'पत्रकार' के रूप में आदिवासी समाज का अध्ययन कर अपने आलेखों और साहित्यिक–रचनाओं के माध्यम से 'आदिवासी विमर्श' को आगे बढाया है। मोहनदास नैमिशराय ने आगे अपनी पत्रिका 'बयान' में दलित विमर्श के साथ–साथ आदिवासी विमर्श को भी महत्त्वपूर्ण स्थान देने का प्रयास किया है। लेपचा, डफला, पिरमी, गारो, खासी, नागा (उत्तर तथा उत्तर पूर्वी क्षेत्र), भील, गरासिया मीणा, महादेव कोली, वार्ली (पश्चिमी तथा उत्तर पश्चिमी क्षेत्र) संथाल, मुंडा, उराव, गौंड, कोल, भूमिया (मध्यवर्ती प्रदेश) टोडा, वायनाड, चेंचु, कुरोवन, अंडमानी, ओंज (दक्षिण क्षेत्र) आदि आदिवासी

जन–जातियों का अध्ययन कर प्रसिध्द समाजविद–पत्रकार श्यामाचरण दुबे ने विवेचन प्रस्तुत किया है. यह विवेचन हिंदी पत्र – पत्रिकाओं में रिपोर्ट, आलेख और साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता रहता है।

अन्तर्राष्ट्रीय चिंतक, लेखक एवं शिक्षाविद प्रो. मधुसूदन त्रिपाठी कहते हैं – ''आज भारत आर्थिक विकास के पथ पर तेज गति से आगे बढता जा रहा है। भारत के हर हिस्से और हर वर्ग के चेहरे पर विकास की झलक देखी जा सकती है। इस सबके बावजूद आज भी समाज का एक वर्ग ऐसा है जो हजारों साल पुरानी अपनी परंपराओं के साथ जी रहा है। भारत के आदिवासी आज भी जंगली परिस्थितियों में किसी तरह से अपना जीवनयापन कर रहे हैं। संख्या में आदिवासी काफी है लेकिन विकास की बयार उन तक नहीं पहुँच पा रही है। आदिवासी समुदाय हमारे समाज का अभिन्न हिस्सा हैं लेकिन आज भी वे समाज की मुख्यधारा में शामिल नहीं हो पाये हैं और जरुरत इस बात की है कि आदिवासियों की समस्या को समझ कर उन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा में शामिल करने के प्रयास किये जाएँ।''[3] इसी प्रयास को आगे बढ़ने का गुरुतर दायित्व हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता ने लिया। बाबूराव विष्णु पराडकर, पंडित सुंदरलाल से लेकर डॉ. भीमराव अम्बेडकर, गणेश शंकर विद्यार्थी, महात्मा गांधी, मदन मोहन मालवीय तथा आधी दुनिया के संपादक मधुसूदन त्रिपाठी, समर लोक की संपादिका पद्मश्री मेहरुन्निसा परवेज, कथन के संपादक रमेश उपाध्याय, चक्रवाक के संपादक निशांत केतु, महाराष्ट्र से प्रकाशित लोकमत समाचार के संपादक अमिताभ श्रीवास्तव, नवभारत टाइम्स ग्रुप के सभी संपादक आज भी आदिवासी विमर्श पर सामग्री प्रकाशित कर आदिवासियों की सामाजिक संरचना, उनकी संस्कृति व धर्म, उनको दिए गए संवैधानिक अधिकारों और आदिवासी विकास कार्यक्रमों पर लंबी बहस छेड़ने के प्रयास में लगे देखे जा सकते है।

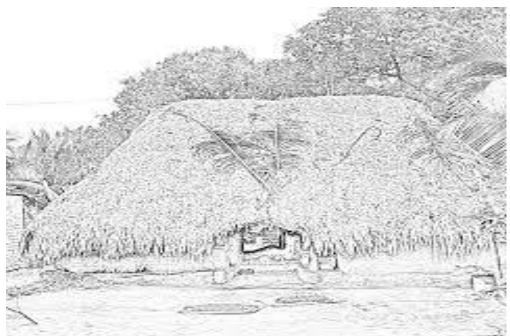

मानव समाज की विकसोन्मुखता के सच को उजागर करते हुए डॉ. एस. आर. सिंह कहते हैं– ''मानव समाज अपने जीवन को और समृद्ध तथा सुविधापूर्ण बनाने के लिए सतत् संघर्ष करता रहा। उसका यह संघर्ष लम्बा और कष्टदायक रहा। अपनी जीविका कमाने का सुगम तथा बेहतर तरीका प्राप्त करने, अपने साथी मनुष्यों के साथ सहयोग के बेहतर तरीके निकालने, कला, साहित्य के विकास के लिए वह आगे की तरफ देखता रहा।''[4] मनुष्य का यह आगे देखना ही अनेक समस्याओं का कारण बना। इसी से वर्गीय वातावरण निर्माण हुआ और एक समूह इतना पीछे रह गया कि वर्तमान में भी वह 'आदिम' ही रह गया। हिंदी के अनेक वरिष्ठ साहित्यिकार–पत्रकारों ने इन आदिम आदिवासियों की सोचनीय दशा की ओर स्वतंत्रता के बाद पूरे देश का ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया। दलित समाज से भी बदतर जीवन जिनके भाग्य में आया, वह आदिवासी समाज वर्तमान में भी अत्यन्त दुःखी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि आज भी आदिवासी समाज तमाम सामाजिक विरोधों को झेल रहा है। वैश्वीकरण के इस दौर में महाराष्ट्र हो या झारखंड, मेघालय हो या मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश हो या नागालैंड; सम्पूर्ण भारतवर्ष में निवास करने वाले अधिकांश आदिवासी जंगली फल, बेरियाँ, पक्षियों के अण्डे, बीमार बकरों, हिरणों, सूअरों आदि शिकार कर अपनी क्षुधा मिटाते हैं। इस संबंध में प्रो. जितेन्द्र श्रीवास्तव का वक्तव्य दृष्टव्य है– ''मानव सभ्यता के इतिहास में शायद ही कोई ऐसी जाति मिले, जो पराधीनों के लिए उदार रही है। यहाँ यह कहने में संकोच नहीं है कि 'संस्कृति के दस्तावेज प्रायः बर्बरता के भी दस्तावेज होते हैं।' गुलामी सबसे बड़ा अभिशाप होता है, वह सामाजिक–राजनीतिक हो अथवा शारीरिक–मानसिक।''[5]

वर्तमान समय में पत्रकारिता में 'प्रोफेशनजिल्म' का प्रादुर्भाव माना जाता है, लेकिन इस प्रादुर्भाव से बचकर हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के अनेक मूर्धन्य पत्रकारों ने अपना सामाजिक कार्य शुरु रखा है। पुराने पत्रकारों के त्याग–बलिदान से अभिभूत होकर ही अनेक पत्रकार 'सूचना विस्फोट' के इस युग में अपना कर्तव्य सफलता पूर्वक संपन्न कर रहे हैं। हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता नये परिवेश के निर्माण का सामर्थ्य रखती है। स्त्रियों, दलितों और किसानों की समस्याओं के साथ–साथ हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता आदिवासियों की समस्याओं पर भी गंभीरता से विचार कर भारत सरकार

को जगाने का काम सफलता पूर्वक कर रही है। आदिवासी विमर्श पर प्रकाशित कृतियों पर बहस कर, संपादकीय टिप्पणियों और निबंधों के माध्यम से हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता ने आदिवासियों की सामाजिक समस्याओं, धार्मिक, राजनीतिक और आदिवासी जीवन के विभिन्न पक्षों पर सत्य का संधान करते हुए प्रकाश डालने का सफल प्रयास किया है। भाषा और शब्दों की साधना के माध्यम से वर्तमान समय में 'आदिवासी विमर्श' को बहस का केंद्र बनाने में हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता की सफलता का द्योतक विद्वानों द्वारा आयोजित की जाने वाली इस तरह की संगोष्ठियां हैं। अंत में दुष्यंत कुमार कि पंक्तियों में आदिवासी–विमर्श पर एक आवाह्न– **ये मूरत बोल सकती है अगर चाहो/अगर कुछ शब्द, कुछ स्वर, फेंक दो तुम भी!**

संदर्भ :

1. संपादक प्रेमचंद – उपन्यास का विषय, 'हंस', वर्ष–1, अंक–1, मार्च 1930 पृष्ठ–18
2. संपादक राजेंद्र यादव –प्रत्यागत, 'हंस', वर्ष–1 अंक–1 अगस्त 1986 पृष्ठ–5
3. प्रो.मधुसूदन त्रिपाठी– भारत के आदिवासी, लेखकीय से उदधृत, पृष्ठ–7
4. डॉ. एस.आर.सिंह – भारतीय सामाजिक विकास और हिंदी उपन्यास, पृष्ठ–10
5. डॉ. जितेंद्र श्रीवास्तव – भारतीय समाज की समस्याएँ और प्रेमचंद, पृष्ठ–13

– शोधार्थी, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय

आलेख

हिन्दी पतन की कथा

सुरभि श्रीवास्तव

आज हिन्दी भारत की संवैधानिक राष्ट्रभाषा भले ही हो, पर व्यवहार में वह राजभाषा, संपर्क भाषा आदि रूपों में विवादास्पद रही है। इन तमाम विवादों के बावजूद हिन्दी की उन्नति व प्रतिष्ठा के लिए विश्व 'हिन्दी पखवाड़ा' 'हिन्दी सप्ताह' और 'हिन्दी दिवस' के नाम पर प्रतिवर्ष भावपूर्ण भाषण दिए जाते हैं, अपने ही घर में हिन्दी दुर्दशा पर रोना रोया जाता है। जिस क्षेत्र में हिन्दी मातृभाषा है, वहॉ की स्थिति गैर हिन्दी प्रान्तों से बदतर है। जो अध्यापक यह समझते है कि हिन्दी उन की जेबी जबान है, वे सचमुच शिक्षण जगत के नासूर हैं। प्रामइरी और हायर सेकंडरी स्तर पर भी भ्रष्ट और गैर जिम्मेदार अध्यापकों की एक लम्बी जमात है, जिसमें कुछ तो मैनेजमेंट के तलवे चाटने में व्यस्त रहते हैं। भाषा के अंतर्गत व्याकरण पढ़ाना वे अपना कर्त्तव्य इसीलिए नहीं समझते हैं कि उन्हें वह नही पढ़ाया गया। फलतः पी0एच0डी0 के बाद भी लोगों को विराम चिह्न तक का ज्ञान नहीं हो पाता उच्चारण की भ्रष्टता से बोल चाल की भाषा भ्रष्ट हुई है और अशुद्ध लिखने की बीमारी से लिखने की भाषा लंगडी हो रही है।

कुंजी मार्का प्राध्यापकों से वातावरण दूषित होता जा रहा है। घिसे पिटे नोट्स का इमला बोलकर क्लास का सत्यानाश हो रहा है। कक्षा में पढ़ाने से लेकर उत्तर पुस्तिकाओं की जॉच तक प्राध्यापकों की लापरवाही और अज्ञानता का कुफल विद्यार्थियों को भुगतना पडता हैं। नियम कुछ ऐसे हैं कि परीक्षक का निर्णय अंतिम होता है। पाए हुए अंकों को जोड दोबारा हो जाएगा पुस्तिका नही जॉची जाएगी। इससे परीक्षक का सम्मान खतरे में पड़ जाता है, उसकी इमानदारी पर प्रश्नावाचक चिह्न लग जाते हैं। पढ़ने के नाम पर हिन्दी अध्यापकों के पास कुछ शेष नही रहा है अपने छात्र जीवन में नोट्स से पढ़ाने वाले अध्यापक भी मिलते है।

समसामयिक अन्य साहित्य का पढ़ना तो दूर रहा, पाठ्य पुस्तकें भी पढाते समय ही पढ़ी जाती हैं।

गद्गद होकर पढ़ाने की शैली आज भी प्रचलित है, ''अहा, 'कामायनी' में प्रसाद ने क्या कमाल दिखाया है? 'सूरदास तब बिंहसि जशोदा ले उर कंठ लगाओं' का कक्षा में एक अध्यापक द्वारा अर्थ बताया गया, 'सूरदास ने प्रसन्न होकर यशोदा को कंठ से लगा लिया।' ये तो सामान्य सा उदारहण था अगर हिन्दी अध्यापकों की स्थिति देखें तो काव्य के ठीक प्रकार से अर्थ स्पष्ट करना उनके बस की बात नहीं है। मजे की बात तो यह है कि जिस प्रवृत्ति के लोग हिन्दी का झंडा लेकर चलने का दम भरते हैं, उन्ही का यह हाल हैं। अगर कोई अंग्रेज हिन्दी में 'मैने खाना खा लिया' को कहे 'मैने काना का लिया' तो हम गदगद हो उठते हैं कि इसे हिन्दी आती है पर हम अपने ही घरमें हिन्दी भाषा का अपमान करने से नही चुकते किसी भी देश में वह विद्वान माना जाता है जिसे अपनी मातृभाषा में प्रवीणता प्राप्त हो, उसके पास मातृभाषा साहित्य का किताबों का संग्रह हो। परन्तु हमारे देश की विडंबना यह है कि यहॉ अंग्रेजी जानने वाला, बोलने वाला ही विद्वान और हिन्दी भाषी पिछड़े वर्ग का समझा जाता है। जाने कब हिन्दी अपने देश में रानी बनने का गौरव प्राप्त कर पाएगी?

–75, सिविल लाइन, फतेहपुर (उ0प्र0)

शोध-लेख

तरन्नुम सिद्दीकी

मन्नू भण्डारी की कहानियों में नारी विमर्श

भारतीय नारी की मुक्ति के आन्दोलन का इतिहास बहुत पुरान है, यह अलग बात है कि तब उसे 'नारी विमर्श' या नारीवादी साहित्य'' जैसी संज्ञा से विभूषित नहीं किया गया था, किन्तु समय एवं परिस्थिति के अनुसार नारी की दशा को सुधारने एवं उन्हें प्रत्येक क्षेत्र में आगे लाने के सतत प्रयास होते रहे हैं। स्वतन्त्रता के बाद से नारी विमर्श एक गम्भीर विचार केन्द्रित मुददा रहा है किन्तु विडम्बना यह रही है कि इस विषय को छूते ही बडे–बडे बुद्धिमान व्यक्ति मानवीयता का आवरण उतार कर पुरूषवादी सुर अलापने लगते हैं। अक्सर यह विषय एक फैश्नेबुल बहस बन कर रह गया है लेकिन विकास की प्रकिया धीमी हो सकती है अवरूद्ध नहीं।

वैदिक काल में भारतीय समाज में नारी का सशक्त व्यक्तित्व था किन्तु उत्त्तोत्तर उसकी दशा हीन होती गई। उपनिषद और ब्राम्हणों के युग में स्त्रियों के धार्मिक अधिकार समाप्त हो गये थे। बैद्धकाल में अनेक स्त्रियाँ निर्वाण की खोज भिझुणियॉ बनी और उत्तरोत्तर उनकी स्थिति गिरती गई। मध्ययुग में स्त्री बिल्कुल पंगु हो गयी थी। परिणामतः नारी ने दीर्धकाल तक अपनी हीन परिस्थिति के पति कोई विरोध प्रकट नहीं किया। मध्यकालीन साहित्य में शास्त्र की केन्द्रिय भूमिका है। संत कवि स्त्री को माया प्रतिरूप मानते थे। कबीर कहते हैं– नारी कुण्ड नरक का, बिरला थंमै बाग। कोई साधू जन ऊबरै सब जग मूक लागे।[1]

जायसी ने स्त्री के प्रेम, त्याग एवं सतीत्व, समर्पण एवं बलिदान की अवधारणा का समर्थन किया। नागमती विषयक मान्यताओं के माध्यम से उन्होंने स्त्रों को लोक धर्म, लोक संस्कृति के साथ जोड़कर उसे एक नया आयाम दिया। तुलसी स्त्री, पराधीनता की पीड़ा को अनुभूति करते हैं उनकी दृष्टि में पति चाहें जैसा है। किन्तु स्त्रों को धर्म–उसकी सेवा, त्याग एवं समर्पण है तुलसी कहते है–

''ढोल गवॉर, सूद्र पशु नारी।
सकल ताडना के अधिकारी।[2]

ढोल का काम बजना लेकिन जब तक उसकी पिटाई न की जाये, वह बजता नहीं है। इसी प्रकार गॅवार, शूद्र, पशु और नारी से काम लेने के लिए उसकी पिटाई अथवा ताड़ना आवश्यक है। नारी समाज का केन्द्र बिन्दु है। नारी के सामाजिक मूल्यों की परखे समाज और साहित्य के पल–पल परिवर्तित परिवेश से हो सकती है। पूर्व प्रेमचन्द्र युग की नारी विलास और श्रृंगार की गुड़ियां मात्र थी। उसके हाथों में अपने जीवन की वागडोर की नहीं थी। वह पुरूषों के हाथ की कठपुतली थी। प्रेमचन्द्र युग के उपन्यासों की नारी शिक्षित और जागरूक है जिसे अधिकार और कर्तव्य का ज्ञान है।

प्रेमचन्दोत्तर युग की नारी अपने अस्तित्व के प्रति जागरूक हुई है और उसने अनेक स्त्रीवादी संगठन बनाये हैं। नारी ने हर क्षेत्र में संघर्ष किया है। और पुरूषों के समकक्ष पदासीन है। इसके विपरीत अशिक्षित नारी आज भी परम्पराओं और मान्यताओं में जकड़ी हुई है।

स्वातन्त्रयोत्तर काल में आधुनिक रोजगार की सृष्टि हुई। नगरीकरण और औधोगीकरण के कारण नारी की सामाजिक सक्रियता का विस्तार हुआ। इस काल में काम–काजी नारी के नवीन जीवन मूल्य स्थापित किये है। इस काल में नारी विमर्श की अवधारण की अभिव्यक्ति है। पाश्चात्य विद्वान सीमोन व भारतीय कवियत्री महादेवी वर्मा के पाश्चात्य महिला उपन्यासकारों में कृष्णा सोबती, उषाप्रियंवदा, शशिप्रभा, सूर्यबाला, राजीसेठ, मन्नू भण्डारी आदि का नाम उल्लेखनीय है।

आधुनिक कथा साहित्य में मन्नू भण्डारी का विशिष्ट स्थान है। बहुमुखी प्रतिभा की धनी मन्नू भण्डारी ने साहित्य के विविध रूपों जैसे उपन्यास, कहानी एवं नाटक आदि में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हिन्दी कथा साहित्य में मन्नू भण्डारी ने भारतीय समाज में स्त्री की दशा एवं दिशा का मार्मिक चित्रण किया है और वे पुरूष के वर्चस्ववादी समाज में स्त्री की मुक्ति के प्रश्न को गम्भीरत से उठती है। ''उन्होंने परम्परागत रूढ़ियों, मान्यताओं तथा नैतिकता से शोषित स्त्री के मौलिक व्यक्तित्व की खोज की है। वह स्त्री को पारंपरिक स्त्रीतत्व के भार से मुक्ति करना चाहती है।''[3]

मन्नू भण्डारी वे अनेक कहानी संग्रह लिखे है जो स्त्री विमर्श से सम्बन्धित है। उनके कहानी संग्रह निम्न है मैं हार गई, त्रिशंकु, यही सच है, एक प्लैट सैलाब, और तीन निगाहों की एक तस्वीर। उनकी कहानी ईसा के घर इंसान में नारी का शोषण दिखाया है। मानव जीवन की सहज स्वाभाविक इच्छाओं को झुठलाने वाले बंधन लेखिका नही स्वीकारती। 'ईसा के घर इंसान' में युवा अध्यापिका पादरियों द्वारा किये गए अमानवीय कुकृत्यों के विरूद्ध कहती है कि – ''मै यहां घुट–घुटकर नहीं मरूंगी मुझे कोई नहीं रोक सकता, जहां मेरा मन होगा, मैं जाऊंगी, मैंने तुम्हारे फादर..............अब वे ऐसी बात नहीं करेंगे।''[4]

यहां एंजिला के माध्यम से धर्म के अनैतिक अमानवीय, जीर्ण शीर्ण रूप का पर्दाफाश किया गया है। उनकी नशा, रानी माँ का चबूतरा, कमरें कमरा और कमरे रखाने आकाश नाई आदि कहानियां में केन्द्रीय परिवार के विखराव की स्थिति चित्रित है। इसी प्रकार मां का चबूतरा की गुलाबी अपने शराबी पति से परेशान है। वह पसीना बहाकर कमाती है और वह घर में बैठा दारू पीता है। लेकिन गुलाबी नशा की आनंदी की तरह सहनशील परम्परागत धार्मिक सामाजिक मूल्यों से बंधी हुई नारी नहीं है। गुलाबी झाडू मारकर अपने पति को घर से निकाल देती है। अपने पति के प्रति जो क्रोध या घृणा गुलाबी के मन में है। उसे वह बच्चों को मारकर या गालियां देकर बाहर निकालती रहती है । ऐसी ऐसी बात वह अपने बच्चों के लिए कहती है, जो कोई मां नहीं कह सकती –''कोस रही हूँ उस दारूखोर को जो' मेरी जान को ये कीड़ मकीड़े छोड़ गया।''[5]

छोरा भी जो जाने किस माटी का बना हुआ है, सारे दिन मोरी के सड़े पानी में सड़ता रहा। पर मरा नहीं, मर जाता तो पाप कटता।'' [6]

मर गए तो पांच पैसे का प्रसाद चढ़ाऊंगी पर मरे भी तो। मेरी जान को लगे हुए है निगोडे।''[7]

इसी प्रकार 'क्षय' में नौकरी पेशा नारी के मन की व्यथा बतायी गयी है। कि आर्थिक विपन्नता किस तरह आदमी के आत्मीय संबंधों को धीरे–धीरे समाप्त करती चली जाती है। आर्थिक दबाव के कारण ही (क्षय) की कुन्ती अपने पापा के मरने तक का विचार मन में लाती है। वह अपने आपको असहाय महसूस करती है तब उसके मुँह से अनायास निकलता है कि हे भगवान, अब तो तू पापा को उठा ले। मुझसे बर्दाश्त नहीं होता। मैं टूट चली हूँ।'[8] पिता के साथ साथ उसकी शारीरिक स्थिति भयावह होती है। कुन्ती सावित्री को उत्तीर्ण करने हेतु अध्यापिकाओं तथा प्रधानाध्यापिका से मिलती है और तब वह स्कूल से बाहर निकलती है, तब वह बुरी तरह खाँसने लगती है। कुन्ती मन ही मन सोचती है कि 'उसकी यह खाँसी, यह खोखली खोखली आवाज, पापा की खाँसी से कितनी मिलती जुलती है। हूबहू वैसी ही तो है। '[9] कुन्ती वर्तमान व्यवस्था के कारण विवशता की मूर्ति बन चुकी है। उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध आचरण करना पड़ता है इस लिए वह स्वयं मन से दुखी और शरीर से क्षयग्रस्त हो जाती है।

हर कहानी से कहीं ना कहीं नारी विमर्श उभर कर आया है। 'घुटन' में भी नारी की दर्द से सम्बन्धित भावनाओं को उजागर किया गया है घुटन की प्रतिमा एक कुशल अध्यापिका है। उसका पति नेवी में काम करता है। वह साल भर में एक वार उसके पास आता है। उसे पति का दोस्तों के साथ शराब पीना और आपस में अश्लील मजाक करना पसन्द नहीं है। इस कल्पना से वह खुद ही घृणा से भर गई। उसे लगा उसका सौन्दर्य बोध धीरे धीरे मरता जा रहा है। वह अपने पति के साथ की कल्पना से ही घबरा उठती थी – 'दोस्तों के बीच बैठकर लड़कियों के अंगों को लेकर अश्लील मजाक करना, पेग पर पेग चढाना यहां तक कि आंखों के डोरे सुर्ख हो उठे और जीभ ऐठकर लड़खड़ाने लगे – और फिर रात में उस सारी मस्ती को, सारे सुरूर को एकाएक प्रतिमा के बदन से पसीना चूने लगा सूखने लगा।'' [10] प्रतिमा की घुटन उसे अर्न्तमुखी बना देती है। वह किसी भी वस्तु में आनंद का अनुभव नहीं करती। एक घुटन एक टीस हमेशा उसके मन में समाती रहती है।

इसी प्रकार 'एक कमजोर लड़की की कहानी में'' में नारी की कुण्ठा व्यथा और असहनीय दर्द को उजागर किया गया है इसकी नायिका (रूप) को मन्नू भण्डारी ने एक ऐसी लड़की के रूप में चित्रित किया है जो वैचारिक दृष्टि से तो विद्रोह करती है। परन्त संस्कारी होने कारण यर्थाथ में कमजोर पड़ जाती है। रूप अपनी विमाता के कारण मामा के यहाँ रहती है और मामा के मुंह बोले बेटे ललित से उसे प्रेम हो जाता है। ललित के विदेश चले जाने पर उसे प्रेम का आभास होता है और उसकी शादी किसी और के साथ कर दी जाती है। रूप उसका विद्रोह नही कर पाती है।

उसका वैवाहिक जीवन पति की व्यवस्था के कारण बोजिल रहता है उसे नहीं पता कि वह जिन्दगी घसीट रही है या जिन्दगी उसे घसीट रही है। वह पति के साथ खुश न होकर भी उसके साथ भारतीय संस्कारों के कारण रहती है और कहती है ''तुम यह क्या कह रहे हो ललित ? जानते हो मेरी मांग में किसी और के सुहाग का सिन्दूर है– अग्नि को सांक्षी देकर मैं उसकी हो चुकी हूँ।[11] वह ललित के कहने पर भागने के लिए तैयार हो जाती है लेकिन उसी रात पति वकील साहब रूप को अपने मित्र की पत्नी को अपने प्रेमी के साथ भाग जाने का समाचार सुनाते है और रूप के प्रति विश्वास प्रकट करते हुए कहते है, ''अरे पढ़ी लिखी तो तुम भी हो, भागने की बात तो दूर रही दो साल हो गये मुझे कभी याद नहीं पड़ता कि तुमने ऑख उठाकर किसी पुरूष से कभी बात भी की है।''[12] परिणामस्वरूप रूप मनोबल संकल्प टूट जाता है वह कमजोर पड़ जाती है। वह सोचती है मित्र की पत्नी नहीं करके पति जग हंसाई और परेशानी का कारण बनी है। जो आज रात वह करने जा रही है तब उसका सारा निर्णय एक पुरानी और पोली इमारत की तरह पहली ही बरसातें में ही घड़घड़ाकर गिर पड़ता है '' रात का एक बना था रूप की ऑखों से एक एक करके ऑसू टपकते जा रहे थे और उसके सूटकेस के एक एक करके कपड़े बाहर निकलते जा रहे थे। [13] परम्परा और संस्कार के कारण रूप कमजोर पड़ जाती है और अंत में प्रेमी ललित के साथ जाकर पति के साथ ही रहती है लेखिका में कहानी में निर्बधं और अमर्यादित प्रेम का प्रतिरोध किया है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि मन्नू भण्डारी के सम्पूर्ण कथा साहित्य में नारी विमर्श चित्रित हैं परन्तु उनकी कहानियों में नारी की समस्याऐं उभर कर सामने आयी है। उनकी कहानियों की समस्याऐं संघर्ष और नारी मुक्ति का आभास कराती है। नारी विमर्श का मतलब पुरूष का विरोध नहीं है बल्कि समाज में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाना है पुरुष और स्त्री के बीच के भेदभाव की खाई समाप्त करना नारी को उसके अधिकार दिलाना है। आदि पुरुष मनु ने जिस नारी के लिए ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।'' कहा, उसकी स्थिति अत्यन्त सोचनीय है। केवल भाषण और बड़ी बड़ी बाते कहने से कुछ नहीं होगा। हमे समाज में नारी को स्थान दिलाने के लिए संघर्ष करना पडेगा। जिस पर मन्नू जी ने लेखनी के माध्यम से वीणा उठाया है । ये पंक्तियां उन नारियों के लिए जो शोषण का शिकार हो रही है। उन्हे अपने अधिकारो के लिए लड़ना होगा। ये अधिकर हमें मांगकर नही छीनने पड़ेंगे।

''सब मिल के पुकारोगे तो लौट आएगा/माजी आओ मेरी आवाज से आवाज मिला दो
ये खामोश मिज़ाजी तुम्हें जीने नहीं देगी/इस दौर में जीना हों तो कोहराम मचा दो।

<u>सन्दर्भ ग्रन्थ सूची</u>

1. कबीर ग्रन्थावली– श्यामसुन्दर दास, बी0 नागरी पचारिणी सभा, काशी। छठवॉ संस्करण 2000 प्रतियाँ, सं0 2013 पृ0सं0
2. स्त्री के लिए जगह– राज किशोर वाणी प्रकाशन 12 ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002, प्रथम संस्करण 1994 पृ0सं0129
3. मन्नू भण्डारी का श्रेष्ठ सृजनात्मक साहित्य साक्षोत्कार डॉ0 बंशीधर, डॉ0 राजेन्द्र मिश्र, प्रकाशन– उपलब्ध नहीं पृष्ठ सं0101
4. मैं हार गई (ईसा के घर इंसान) कहानी संग्रह मन्नू भण्डारी। राधाकृष्ण प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड 7/31 अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली। संस्करण 2001, पृष्ठ सं025
5. 'यही सच है, (कहानी संग्रह)(रानी माँ का चबूतरा) –मन्नू भण्डारी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली 110002 पहला संस्करण 2004,पृ0सं0 138.
6. वही पृ0सं0 137
7. वही पृ0सं0 137
8. यही सच है (कहानी संग्रह) (क्षय) मन्नू भण्डारी, राधा कृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31 , अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली 110002 पहला संस्करण 2004, पृ0सं024
9. वही पृ0सं027
10. तीन निगाहों की एक तस्वीर (कहानी संग्रह) (घुटन) मन्नू भण्डारी राधा कृष्ण प्रकाशन प्रा0लि0जी–17 जगतपुरी, दिल्ली, राधाकृष्ण पेपर बैक्स पहला संस्करण –2001, पृ0सं075
11. यही सच है (एक कमजोर लड़की की कहानी) मन्नू भण्डारी, राधा कृष्ण प्रकाशन प्रा0 लि0 जी0 7/31 अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली, 110002 पहला संस्करण–2004, पृ0 सं0 79.
12. वही पृ0सं0 81–82
13. वही पृ0सं0 82

– शोधार्थी, हिंदी, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़

शोध-लेख

मिजानुर हुसैन मंडल

ग्वालपड़िया भाषा एवं लोक–संस्कृति

भाषा मानव समाज की अभिव्यक्ति का साधन है। भाषा समाज में व्यक्ति के विचारों एवं भावों के संप्रेषण का एक अन्यतम माध्यम है। भाषा एक प्रकार का संकेत है, जिसके माध्यम से एक व्यक्ति अपना मंतव्य दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाता है। भाषा किसी भी समाज की स्थायी संपत्ति नहीं होती। भाषा अर्जित वस्तु है, जिसे विरासत के रूप में हम अपने समाज से अर्जित करते हैं। भाषा का अर्जन अनुकरण द्वारा होता है। अनुकरण के द्वारा ही हम किसी भाषा को सीखते है और उसके माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति करते है ।

असमिया भाषा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के मागधी अपभ्रंश से विकसित भाषा है। भोलानाथ तिवारी ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को वर्गीकृत करते हुए असमिया भाषा को पूर्वी वर्ग में रखा है। और इसकी उत्पत्ति मागधी उपभ्रंश से मानी है। असमिया असम राज्य की भाषा है इसका साहित्य 14–15 वी शताब्दी से प्राप्त होता है। इसके प्रमुख साहित्यकार–सरस्वती, माधव कंदली, शंकरदेव, माधवदेव, नवकान्त बरुवा आदि हैं। असमिया भाषा का एक अन्य रूप ग्वालपड़िया उपभाषा है, जो पश्चिम असम में बोली जाती है। इसके संदर्भ में ग्रीयर्सन का मत है कि 'असमिया भाषा की प्रचलित (मान्य) उपभाषा शिवसागर और उसके आस–पास बोली जाने वाली उपभाषा है ।oooo हम जितना ही पश्चिम की ओर चलते है उतनी ही स्पष्ट रूप में यह उपभाषा मिलती है। मैंने इसको पश्चिम क्षेत्र की असमिया कहा । इस उपभाषा को कामरूप जिले और ग्वालपड़िया जिले के लोग बोलते हैं ।'[1]

संस्कृत विद्वान वीरेंद्रनाथ भी ग्वालपड़िया क्षेत्र के लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा को ग्वालपड़िया भाषा मानते है– 'ग्वालपाड़ा में स्थानीय लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा को ग्वालपड़िया भाषा कहते है। ग्वालपाड़ा में इस भाषा को 'देशी–भाषा' कहा गया है।'[2] ग्वालपाड़ा क्षेत्र पश्चिमी असम के धुबड़ी, ग्वालपाड़ा, कोकराझार, बंगाइगाँव आदि जिलों में फैला हुआ है। असम के इन क्षेत्र के अतिरिक्त यह पश्चिम कामरूप तथा उत्तर बंगाल के रंगपुर और जलपाईगुड़ी में भी आंशिक रूप से बोली जाती है। ग्वालपड़िया उपभाषा के दो रूप है–

1. पूर्वी ग्वालपड़िया उपभाषा
2. पश्चिमी ग्वालपड़िया उपभाषा

पूर्वी ग्वालपड़िया उपभाषा पूर्वी ब्रह्मपुत्र के उत्तर प्रांत से लेकर दक्षिण प्रांत तक बोली जाती है और पश्चिम ग्वालपड़िया उपभाषा भी पश्चिमी ब्रह्मपुत्र के उत्तर से लेकर दक्षिण तक बोली जाती है । इन दोनों उपभाषाओं के रूप इस प्रकार हैं–

पूर्वी ग्वालपड़िया उपभाषा	**पश्चिमी ग्वालपड़िया उपभाषा**
1. मोई भात खांग (मैं भात खाऊँगा)	1. मुइ भात खांग
2. एखन काय आहिल ? (अभी कौन आया ?)	2. एखन काई आसिल ?

अतः ग्वालपड़िया उन प्राचीन भाषाओं में से एक है जिन्होंने असम को रंगीन बनाया है। लोक–संस्कृति रू– लोक संस्कृति की परम्परा उतनी ही पुरानी है जितनी पुरानी मनुष्य जाति। भारत प्राचीन काल से ही विभिन्न संस्कृतियों का देश रहा है । यह वैविध्य ही भारतीय संस्कृति का सौंदर्य है। संस्कृति का निर्माण विभिन्न तत्वों जैसे दृ कला, संस्कार, उत्सव, त्योंहार, खान–पान, रहन–सहन, वस्त्र, गीत, संगीत आदि से मिलकर होता है। इसमें लोक और शास्त्र का परस्पर समन्वय एवं आदान–प्रदान भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

लोक शब्द का सामान्य अर्थ है– जन, जनता, समूह, लोग, मनुष्य, और आम जन आदि । डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक के संबंध में अपने विचार को प्रकट करते हुए लिखा है कि– ''लोक शब्द का अर्थ 'जन–पद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और गावों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियों नहीं है । ये लोग नगर परिस्कृत रुचि सम्पन्न तथा सु:संस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और आकृत्तिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिस्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुए आवश्यक होती है उनको उत्पन्न करते हैं ।''[3] इस प्रकार 'लोक' से आशय किसी भू–भाग में निवास करने वाली उस समान्य जनता से है जिसका जीवन सरल एवं अकृतिम होता है तथा जिसकी कुछ अपनी मान्यताएं एवं विश्वाश होते है जो उन्हें एक सूत्र में बाँधते है। 'लोक' की इन मान्यताओं, विश्वासों, परम्परा, खान–पान, रहन–सहन, रीति–रिवाज, गीत–संगीत तथा भौतिक संसाधनों से ही उसकी संस्कृति का निर्माण होता है, जिसे 'लोक–संस्कृति' कहते है।

ग्वालपड़िया लोक–संस्कृति एक प्राचीन लोक संस्कृति है। ग्वालपड़िया समाज में हिन्दू, मुस्लिम, क्रिस्ताइन, सिख, बौद्ध, जैन आदि अनेक सम्प्रदायों के लोग रहते है। इसके साथ ही कोच– राजबंशी, बोड़ो, राभा, मेस आदि जनजातियाँ भी ग्वालपड़िया समाज का अंग है। इन सभी सम्प्रदायों एवं जनजातियों की एक मिली–जुली सामान्य संस्कृति है, जिसे 'ग्वालपड़िया लोक–संस्कृति' कहते है। ग्वालपड़िया लोक–संस्कृति मुखतः कृषि प्रधान लोक–संस्कृति है। इस संस्कृति के लोगों का मुख्य पेशा कृषि है। संसार की अन्य लोक–संस्कृतियों की तरह ग्वालपड़िया लोक–संस्कृति में भी लोक विश्वास, लोक उत्सव, पूजा–पाठ, तंत्र–मंत्र, आदि विशेष महत्व है।

जन्म– ग्वालपड़िया समाज में हिंदुओ में पुत्र जन्म के अवसर पर घर की दीवार को लकड़ी के डंडे से पाँच बार पीटने की प्रथा है और मुसलमानों में बच्चे के कानो में अजान देने का रिवाज है । पुत्र जन्म के विषमदिन में नाई के द्वारा बच्चे का बाल कटवाया जाता है और नाई को 1 किलो चावल 100 ग्राम तेल तथा कपड़ा दान में दिया जाता है। पुत्र जन्म के समय हिन्दू समाज में स्त्रियों द्वारा पुत्र जन्म का गीत भी गया जाता है। गीत की कुछ पंक्तिया इस प्रकार है–

अन्योर हैल दशमाश दशदिन/मोर हैल बतसर।
कोन शनि सोमाइसे/ मोर गरभेर भीतर।

नामकरण– ग्वालपड़िया समाज में नाम का विशेष महत्व होता है। इस समाज में महीने, दिन, आकृति आदि के आधार बच्चे का नाम रखने की परंपरा है।

(क) महीने के आधार पर– कार्तिक महीने में जन्म लेने से 'कातिया' कहते है ।

(ख) दिन के आधार पर– सोमवार को जन्म लेने से 'संबारू' नाम रखते है ।

(ग) आकृति के आधार पर– जो पैर से विकलांग होता है उसे 'लेंगरा' कहते है ।

खान–पान– चावल, मछली, मांस, एवं शाक पूर्वत्तर भारत के सामान्य भोजन है, इसके अतिरिक्त ग्वालपड़िया समाज के प्रमुख व्यंजोनो सिदल, शूकान माछ(सूखी मछली) एवं नहुल (भीना हुआ चावल) आदि का विशेष महत्व है।

(क) सिदल– 'सिदल' सूखी मछलियों से बनती है । सूखी मछली और कछु (एक पौधा) के डंथल को ओखल में कूट कर बनाया जाता है । 'सिदल' ग्वालपड़िया समाज में बहुत चाव से खाया जाता है ।

(ख) शूटका– जब मछलियों को धूप में सुखाया जाता है तो उसे 'शूटका' कहते है । इन सूखी मछलियों को भूनकर तथा पकाकर खाने की परंपरा है ।

(ग) नहुल– भुने हुए चावल को 'नहुल' कहते है । इस नहुल को पिसकर गुड़ के सात भी खाया जाता है ।

पूजा–पाठ– (क) मनसा पूजा–'मनसा' पूजा श्रावण महीने में किया जाता है । 'मनसा' सर्पो की देवी है । साँप से बचने के लिए मनसा देवी की पूजा की जाती है। ग्वालपड़िया समाज में मनसा को 'विषहरि' भी कहते है। इस पूजा में दूध और केला मनसा देवी को चढ़ाया जाता है और फिर दूध और केला को ऐसे स्थान पर रखा जाता है जहा पर साँप का निवास हो। इसके पीछे मान्यता है कि साँप आ कारके उस दूध और केला को खाते है। मनसा पूजा के दिन मेला भी लगता है। 'मनसा पूजा' के दिन गीत भी गाने कि परंपरा है। गीत की कुछ पंक्तिया इस प्रकार हैं –

लघुकथा

जयेन्द्र कुमार वर्मा

जीविका

'इण्टरव्यू का रिजल्ट तो आ गया? क्या हुआ...सेलेक्शन हुआ?' मैंने पूछा।

'नहीं हुआ अंकल।' वह थोड़ा झेंपकर बोला।

'कोई बात नहीं। तैयारी जारी रखो। एक दिन सफलता जरूर मिलेगी।' मैंने उसे समझाया।

'अब तो मैं गाँव लौट रहा हूँ अंकल।' उसने बैग में कपड़े रखते हुए कहा– 'बहुत हो चुकी तैयारी। अब मन नहीं लगता। तीस पार कर गया हूँ।'

'तो गाँव में क्या करोगे? खेत भी तो नहीं हैं ज्यादा। जीविका कैसे चलेगी?'

'जीविका के विषय में मैंने सोच लिया है अंकल।'

'क्या सोचा?'

'मैंने ग्राम प्रधानी का चुनाव लड़ने का निश्चय कर लिया है। समीकरण कुछ ऐसे बन रहे हैं कि जीत की पूरी उम्मीद है।'

'यह तो समाज सेवा हुई।' मैंने तुरन्त कहा– 'जीविका के विषय में बताओ।'

'अंकल, आप किस दुनिया में जी रहे हैं!' वह खीझकर बोला– 'आपको इतना भी सेन्स नहीं कि आज चनाव में जीत का मतलब क्या होता है!'

उसके बदले हुए व्यवहार से हड़बड़ाहट में मेरे मुँह से निकल गया– 'क्या मतलब?'

'मतलब समझना है तो सिविल लाइन्स जाकर वर्तमान प्रधान की दो करोड़ की कोठी देख आना। आज से पाँच साल पहले इसी मुहल्ले में मेरी तरह किराये के कमरे में रहकर कलम और दिमाग घिस रहा था।' वह उत्तेजित होकर बोला और कमरे का किराया मेरी ओर फेंककर कमरे से बाहर निकल गया।

मैं भौंचक उसे देखता रहा।

–559, पूर्वी पनी, फतेहपुर–212601

शुनेक शुनेक ओहे चांदो सदागर
एलाओ जदी वाचिबार चाइस तुई
मोरे पूजा कर ओहे चांदो ओहे सदागर।।

(मनसा अपने भाई से कहती है कि हे सदागर ! अगर तुम मुझसे बचना चाहते हो तो मेरी पूजा करो।)

(ख) बाँस पूजा– बाँस पूजा का आयोजन बसंत काल में होता है। बाँस पूजा को 'मदन–काम' नाम से भी जाना जाता है। मुस्लिम समाज में इस अनुष्ठान को 'मादार' कहते है। बाँस की वंश वृध्दि के लिए यह पूजा की जाती है। इस पूजा में कुछ सात्विक विचार वाले लोग कमर में अंगोछा बांध कर बाँस को सफेद या लाल कपड़ो से सजाकर खड़ा करते है और फिर उसके चारों ओर ढोल और कांश बजाकर सामूहिक रूप से नाचते गाते है। और फिर उन बाँसो को नीचे उतारकर उन्हे नदी में ले जाकर अच्छी तरह धोकर अगले साल की पूजा के लिए रख देते है। शाम में ठाकुर जी के पूजा के सात इस पूजा की समाप्ति की जाती है।

तंत्र–मंत्र– ग्वालपाड़ा समाज में तंत्र–मंत्र आज भी प्रचलित है। तंत्र–मंत्र को ग्वालपड़िया समाज में 'बानमारा' कहते हैं। भूत प्रेत से लोगों को बचाने के लिए तंत्र–मंत्र, टोना–टोटका का प्रयोग किया जाता है। अगर किसी स्त्री या पुरुष पर भूत–प्रेत का साया पड़ जाता है तो उसे तंत्र–मंत्र के द्वारा ठीक करने का प्रयास किया जाता है। ब्रह्मबान मंत्र का एक उदाहरण इस प्रकार है–

ब्रह्मार आरे जूरील बान/बर बर
विषय नाशय टान ।।

इस प्रकार ग्वालपड़िया भाषा एवं लोक संस्कृति की अपनी एक विशिष्ट पहचान है और वह अपनी इस विशिष्टता के साथ असमिया भाषा एवं संस्कृति को संवृध्द बना रही है। ग्वालपड़िया भाषा एवं लोक संस्कृति भारत की भाषाई एवं सांस्कृतिक विविधता के स्वरूप की पहचान कराती है। अतः प्रत्येक संस्कृति प्रेमी एवं विवेकशील मनुष्य का कर्तव्य बनता है कि वह ग्वालपड़िया भाषा एवं लोक संस्कृति की रक्षा करें और भारत की भाषाई एवं सांस्कृतिक संपन्नता को बनाया रखे ।

संदर्व ग्रंथ–सूची

1- L.S.I, VOL.5 PART 1 page-394
2. स० विभा भरली, कल्पना तालुकदार, ग्वालपड़िया उपभाषा, रूप वैचित्रय, पृ० संपादकीय
3. कृष्णदेव शर्मा, लोक साहित्य, समीक्षा, पृ० 2

–अतिथि प्रवक्ता, डरंग कालेज, तेजपुर – 784001